फोकस इण्डिया
प्रकाशन
दिसम्बर, 2016

आओ सहकार्य करें

भारत में ग्रामीण उत्पादक समितियां

पृष्ठभूमि तथा अध्ययन

सहयोग
रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग,
दक्षिण एशिया

आओ सहकार्य करें

भारत में ग्रामीण उत्पादक समितियां

पृष्ठभूमि तथा अध्ययन

FOCUS ON THE GLOBAL SOUTH

आओ सहकार्य करें
भारत में ग्रामीण उत्पादक समितियां : पृष्ठभूमि तथा अध्ययन

लेखक : **अश्लेशा खड़से**

प्रकाशन : **दिसम्बर, 2016**

द्वारा प्रकाशित :
और इस पुस्तिका
की प्रतियां पाने
के लिए संपर्क

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ
33–डी, तीसरी मंजिल, विजय मंडल एनक्लेव
डी.डी.ए. एस.एफ.एस. फ्लैट्स, कालू सराय, हौज खास
नई दिल्ली–110016
टेलीफोन : 91–11–26563588, 41049021
http://focusweb.org/

सहयोग :

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग, साउथ एशिया
सेंटर फोर इंटरनेशनल कॉ–ऑपरेशन
सी–15, दूसरी मंजिल, सफदरजंग डेवलपमेंट एरिया मार्केट,
नई दिल्ली–110016
www.rosalux-southasia.org

"Sponsored by the Rosa Luxemburg Foundation e.V. with funds of the Federal Ministry for Economic Cooperation and Development of the Federal Republic of Germany."

"Gefördert durch die Rosa-Luxemburg-Stiftung e.V. aus Mitteln des Bundesministerium für wirtschaftliche Zusammenarbeit und Entwicklung der Bundesrepublik Deutschland"

आवरण फोटो साभार : लेखक

डिजाइन एवं मुद्रण : **इंडिगो**, 9313852068

इस पुस्तिका की विषयवस्तु का इस शर्त के साथ बिना–रोक टोक के पुनर्मुद्रण और उद्धृत किया जा सकता है कि इस स्रोत का उल्लेख किया जाए। फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ उस प्रकाशित सामग्री को पाने पर आभारी रहेगा, जिसमें इस रिपोर्ट का उल्लेख किया गया है।

यह एक अभियान प्रकाशन है और निजी वितररण के लिए है!

विषय सूचि

प्राक्कथन 5

भूमिका 10

1 छोटे, सीमांत उत्पादकों और महिलाओं के लिए सामूहिक उत्पादन की संभावनाएं 12

2 सहकारी समिति क्या है और सहकारिता के सिद्धांत क्या हैं ? 14

3 ऊपर से नीचे का दृष्टिकोण बनाम नीचे से ऊपर के दृश्टिकोण वाले संयुक्त खेती के मॉडल – कुछ इतिहास 15

4 भारत में सहकारी समितियों की सफलताएं 19

5 भारत में पारंपरिक सहकारी समितियों के सामने चुनौतियां 23

ग्रामीण सहकारिता से संबंधित भारत के कानून 26

1 भारत के संविधान के अनुसार 26

2 सहकारी समिति अधिनियम, 1912 26

3 बहु–राज्य सहकारी समिति अधिनियम, 2002 27

4 परस्पर–सहायता सहकारी समिति अधिनियम, 1995 28

नए दौर की कंपनियां – किसान उत्पादक कंपनी 29

स्वयं–सहायता समूह (SHG) और अति–लघु उद्योग (Micro Enterprises) 33

केस स्टडी 36

1 धारानी सहकारी समिति (परस्पर–सहायता सहकारी समिति का उदाहरण) 36

2 'कुडुम्बश्री' – केरल में महिलाओं की संयुक्त खेती कार्यक्रम 38

3 गंभीरा संयुक्त खेती समिति 42

4 डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी, तेलंगाना में महिलाओं की सामूहिक खेती 45

5 वसुंधरा एग्री–होर्टी प्रोड्यूसर कंपनी (VAPCOL) : किसान उत्पादक कंपनी 47

संदर्भों **(References)** 51

प्राक्कथन

हकीकत तो यह है कि मौजूदा व्यवस्था के तहत, पूरे वैश्विक अर्थव्यवस्था में खाद्य का प्रवाह गरीबी और भुखमरी वाले इलाकों से संपन्नता और बाहुल्य वाले इलाकों की ओर होता है। 'भोजन' अब स्वास्थ्य के लिए हानिकारक आहार का पर्याय बन गया है जो मुख्यतः वसा (fat), शक्कर, श्वेतसार (Starch), कैंसर–जनक रसायनिक अवशेषों से भरा होता है, और जो फाइबर, प्रोटीन, विटामिन, फल और सब्जियों से अपूर्ण है।

ला विया कम्पेसिना द्वारा प्रकाशित पुस्तक ''सस्टेनेबल पेजेंट एंड फैमिली फार्म एग्रीकल्चर कैन फीड द वर्ल्ड''[i] (2014) से उद्धृत

आर्थिक विकास और औद्योगिक–कृषि व्यवस्था की तरफदारी करने वाले लोगों के दावों के उलट कार्पोरेट खाद्य उत्पादन न सिर्फ भुखमरी कम करने में असफल रहा है बल्कि यह सुरक्षित और पौष्टिक भोजन उपलब्ध करने में भी विफल रहा है। 'विश्व खाद्य कार्यक्रम' (WFP) और 'खाद्य एवं कृषि संगठन' (FAO) के वर्ष 2015 के आंकड़ों के अनुसार इस वक्त विश्व भर में करीब 79.5 करोड़ लोग भूख से पीड़ित हैं। इनमें से 98 प्रतिशत लोग विकासशील देशों में रहते हैं। विश्व के तीन–चौथाई से भी ज्यादा भूखे लोग एशिया और अफ्रीका के ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। ये लोग पूरी तरह से भोजन, रोजगार और आमदनी के लिए कृषि पर निर्भर है। 'खाद्य एवं कृषि संगठन' (FAO)[ii] के अनुसार विश्व में आधे से ज्यादा भूखे लोग छोटे किसान हैं, 20 प्रतिशत भूमिहीन और करीब 10 प्रतिशत लोग मत्स्य पालन, पशुपालन या वन–संसाधन के ऊपर आश्रित हैं। बचे हुए 20 प्रतिशत लोग शहरों में या शहरों के आसपास झुग्गियों में रहने के लिए मजबूर हैं जिन्हें काम की तलाश में गांव से शहर की ओर पलायन करना पड़ा है। इन आंकड़ों में प्राकृतिक आपदाओं, युद्ध और सशस्त्र संघर्ष के कारण हुए विस्थापितों या शरणार्थियों की संख्या शामिल नहीं है। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि स्थिति कितनी भयावह है।

विडम्बना तो इस बात की है कि भूख से पीड़ित ज्यादातर लोग खुद खाद्य उत्पादक हैं। यह इसलिए भी चौंकाने वाला है क्योंकि पूरे विश्व में अधिकतर खाद्य का उत्पादन छोटे किसानों द्वारा या छोटे पैमाने पर किया जाता है। महिलाओं को पूरे विश्व में प्रमुख खाद्य–उत्पादकों के रूप में स्वीकार किया जा रहा है पर फिर भी सामाजिक, सांस्कृतिक और ढांचागत कारणों से उन्हें भुखमरी और कुपोषण का ज्यादा गहरा और दीर्घकालीन असर झेलना पड़ता है।[iii]

ला विया कम्पेसिना (LVC), ETC ग्रुप, GRAIN, फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ, अंतर्राष्ट्रीय विकास शोध केन्द्र (IDRC) तथा अन्य संस्थाओं द्वारा किए गए शोध से यह पता चलता है कि किसान, मछुआरे, चरवाहे, वन समुदाय, और स्थानीय लोग विश्व की एक–चौथाई से भी कम खेती की जमीन और संसाधनों का इस्तेमाल करके आश्चर्यजनक मात्रा में और विविध प्रकार का खाद्य उत्पादन करते हैं।[iv] इनके उत्पादन से जैव विविधता को प्रोत्साहन, पारिस्थितिकी–तंत्र की सुरक्षा, पानी का संरक्षण, और स्थानीय अर्थव्यवस्था

मजबूत बनती है। ये इतने टिकाऊ और लचीले होते हैं कि आसानी से प्राकृतिक आपदाओं तथा जलवायु परिवर्तनशीलता को झेल लेते हैं।[v] इसके विपरीत, औद्योगिक कृषि में मात्र 30 प्रतिशत खाद्यान्न के उत्पादन के लिए 70 प्रतिशत संसाधन का इस्तेमाल किया जाता है। यही नहीं इस तरह की खेती से भारी मात्रा में कचरा पैदा होता है और पारिस्थितिकी का विनाश होता है। लोगों, पशुओं और पर्यावरण के ऊपर भी काफी बुरा प्रभाव पड़ता है।[vi] औद्योगिक खेती से जलवायु के ऊपर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। इसकी वजह से जनेटिक अपक्षरण (genetic erosion) बढ़ जाता है और गरीबों के बचे रहने के लिए जरूरी आधार घटते जाते हैं जो अपने भोजन, ऊर्जा, औषधि और आश्रय के लिए पेड़–पौधों पर निर्भर हैं।[vii]

शोध से यह भी पता चलता है कि बड़े खेतों की तुलना में छोटे खेत ज्यादा उपजाऊ और बहु–कार्यात्मक होते हैं, पर फिर भी ये लगातार कम होते जा रहे हैं। अब इनका हिस्सा विश्व की कुल खेती की जमीन का एक–चौथाई से भी कम हो गया है। जमीन, पानी, जंगल और पारिस्थितिकी तंत्र के ऊपर लगातार कब्जा किया जा रहा है ताकि वृक्षारोपण, औद्योगिक कृषि, बड़ी ढांचागत संरचनाएं, ऊर्जा उत्पादन, निष्कर्षण उद्योग (Extractive industry), पर्यटन, और शहरी विकास इत्यादि किया जा सके।[viii] भूमि, पानी, बीज तथा अन्य जरूरी संसाधन अब कॉरपोरेट और अभिजात वर्ग के कब्जे में आते जा रहे हैं। वे किसानों तथा अन्य छोटे उत्पादकों को उनके जीवन और आजीविका के आधार से काटते जा रहे हैं। कृषि संकट, इस प्रकार तेजी से गहराता जा रहा है।

आर्थिक और वित्तीय भूमंडलीकरण के विस्तार के साथ–साथ खाद्य उत्पादन, निर्वाह खेती, सामाजिक–सांस्कृतिक आदान–प्रदान और यहां तक की जीवित रहने के लिए आवश्यक गतिविधियों के ऊपर अब बाजार हावी हो रहा है। इन पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का अधिपत्य है और सरकारें भी इन्हें बढ़ावा दे रही हैं। उत्पादन सामग्री, स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा, आवश्यक सेवाएं तथा अन्य घरेलू जरूरतों को पूरा करने के लिए पैसों की उपलब्धता जमीन और संपत्ति के साथ जुडी होती है। इन्हें कर्ज लेने के लिए गिरवी रखना पड़ता है। ब्याज दरें आसमान छू रहे होते हैं और इस प्रकार ग्रामीण परिवार कर्ज के महाजाल में फंसता जाता है। पूरे एशिया में पलायन तेजी से बढ़े हैं क्योंकि ग्रामीण परिवारों को कर्ज चुकाने के लिए और अपनी गिरवी रखी हुई जमीन को वापस पाने के लिए गांव छोड़ कर शहरों या दूसरे इलाकों में पलायन करना पड़ रहा है। ज्यादातर समय उन्हें काम नहीं मिलता है और मिलता भी है तो मजदूरी बहुत कम होती है। इस तरह के काम न सिर्फ अनिश्चित और असुरक्षित होते हैं बल्कि इनमें सामाजिक तथा मानव अधिकारों का भी हनन होता है।

लोगों की खाद्य संप्रभुता

खाद्य संप्रभुता लोगों का स्वास्थ्य और सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त भोजन का अधिकार है जिसका उत्पादन परिस्थितिक रूप से उचित और टिकाऊ पद्धति से किया गया हो और उनका खाद्य और कृषि व्यवस्था चुनने का भी अधिकार है। यह अपनी खाद्य व्यवस्था और नीतियों में बाजार और कंपनियों के बजाय उन लोगों को केंद्र में रखता है जो उत्पादन, वितरण और खाद्य का उपभोग करते हैं। यह अगली पीढ़ी के हित की भी हिफाजत करता है। खाद्य संप्रभुता में स्थानीय और

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और बाजार को प्राथमिकता दी जाती है। यह किसानों, परिवार खेती, मत्स्य पालन, चरवाहे नियंत्रित चराई को सशक्त बनाता है और पर्यावरण, समाज और आर्थिक स्थिरता के आधार पर खाद्य उत्पादन, वितरण और उपभोग को प्रेरित करता है। खाद्य संप्रभुता में पुरुषों और महिलाओं, लोगों, जातियों, समुदायों, सामाजिक श्रेणियों और पीढ़ियों के बीच शोषण और गैर–बराबरी रहित नए सामाजिक संबंधों का सृजन होता है।

– 'खाद्य संप्रभुता के लिए फोरम' का घोषणा पत्र, Nyeleni 2007[ix]

वर्ष 1996 में विश्व खाद्य शिखर सम्मेलन के दौरान ला विया कम्पेसिना और मित्र संगठनों ने 'खाद्य संप्रभुता' की आधारशिला रखी। 'खाद्य संप्रभुता' एक ऐसी अवधारणा है जो न सिर्फ भूमंडलीकृत उत्पादन और वितरण के कॉरपोरेट अधिपत्य वाले और बाजार संचालित मॉडल को चुनौती देता है, बल्कि भुखमरी और गरीबी से लड़ने के लिए स्थानीय अर्थव्यवस्था के विकास व सशक्तिकरण का एक नया मॉडल भी प्रदान करता है। इस बात को मान्यता देते हुए कि स्थानीय समुदाय एवं जन आंदोलन पहले से ही खाद्य संप्रभुता के कई तत्वों का पालन करते आ रहे हैं, वर्ष 2007 में इस अवधारणा को माली (अफ्रीका) में हुई 'खाद्य संप्रभुता पर अंतर्राष्ट्रीय फोरम' की बैठक में और आगे विस्तार किया गया। सबसे महत्वपूर्ण था–''लोगों का'' शब्द का जुड़ना जिससे जन आंदोलनों के प्रयासों और सरकारों के प्रयासों से अलग करके देखा जा सके। सरकारें कई बार 'संप्रभुता' शब्द का इस्तेमाल विनाशकारी व्यापार और निवेश नीतियों को वैधता प्रदान करने के लिए करती हैं।

अवधारणा और राजनीति के आधार पर खाद्य–संप्रभुता और खाद्य–सुरक्षा में बहुत अंतर है। खाद्य सुरक्षा में यह महत्वपूर्ण नहीं कि भोजन कहां से आया है या किन स्थितियों में इसका उत्पादन व वितरण किया गया है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अक्सर पर्यावरण का दोहन किया जाता है। इन्हें सब्सिडी और नीतियों का पूरा समर्थन प्राप्त होता है जो कृषि कंपनियों को फायदा पहुंचाने के लिए स्थानीय खाद्य उत्पादकों को बर्बाद करने में भी नहीं झिझकते हैं। परन्तु, 'खाद्य संप्रभुता' में भुखमरी और गरीबी से निपटने के लिए पारिस्थितिकीय रूप से उपयुक्त उत्पादन, वितरण और उपभोग, सामाजिक–आर्थिक न्याय और एक मजबूत स्थानीय खाद्य व्यवस्था के ऊपर जोर डाला जाता है। खाद्य संप्रभुता वास्तव में लोगों के लिए दीर्घकालीन खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करता है। यह ऐसे व्यापार और निवेश की बात करता है जिससे समाज की सामूहिक आकांक्षाओं को पूरा किया जा सके न कि कॉरपोरेट और अभिजात वर्ग के लिए मुनाफा बटोरा जाए। 'खाद्य संप्रभुता' उत्पादक संसाधनों के ऊपर सामूहिक नियंत्रण, छोटे उत्पादकों के लिए कृषि–सुधार और पट्टा–सुरक्षा, पारिस्थितिकी कृषि, जैव विविधता, स्थानीय ज्ञान, किसानों, महिलाओं, स्थानीय लोगों और मजदूरों के अधिकार, सामाजिक सुरक्षा तथा जलवायु न्याय को प्रोत्साहित करता है।

खाद्य संप्रभुता कभी भी भुखमरी, गरीबी और गैर–बराबरी की समस्या का बना बनाया समाधान पेश नहीं करता, बल्कि यह खाद्य व्यवस्था के लोकतांत्रिकरण की रणनीति पेश करता है, जिसे विभिन्न स्थितियों के अनुसार विकसित या ढाला जा सके। इसके प्रमुख सिद्धांत हैं – जमीन और क्षेत्र का बचाव, पुनर्वितरण आधारित कृषि सुधार, पारिस्थितिकी कृषि, सभ्य काम, मानव अधिकार का सम्मान, स्थानीय अर्थव्यवस्था का

निर्माण, और छोटे उत्पादकों और मजदूरों के लिए फायेदेमंद बाजार को मजबूत करना। यह उत्पादन, मार्केटिंग और उपभोग में आए महत्वपूर्ण बदलावों, जैसे – सामूहिकता, मूल्य संवर्धन, उत्पादक एवं सेवाओं का उचित मूल्य निर्धारण, और उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच मजबूत तथा पारस्परिक सहयोग वाले संबंध, इत्यादि को भी दर्शाता है। ग्रामीण हो या शहरी, दोनों के लिए खाद्य संप्रभुता मायने रखती है।

उत्पादन, सुरक्षण, वित्त पोशण (financing), भंडारण और नियंत्रण के सामूहिक प्रयासों में ऊपर की बहुत सारी चीजें अपने आप आ जाती हैं। सामूहिकता के कई स्वरूप हो सकते हैं, जैसे – क्षेत्रीय नियंत्रण के लिए स्थानीय लोगों की समिति, महिलाओं का बीज बचत समूह, खाद्य–प्रसंस्करण समूह, या स्थानीय उत्पादक सहकारी समितियां, मजदूरों द्वारा संचालित व्यवसाय, सामुदायिक भूमि ट्रस्ट और शहरी खाद्य सहकारी समिति इत्यादि। खाद्य क्षेत्र में सहकारिता के कई फायदे हो सकते हैं, जैसे – स्थानीय खाद्य व अनाज का उत्पादन और सेवन, स्थानीय फसल, पौधे, पेड़, मछली और पशुओं को प्रोत्साहन; खाद्य व्यवस्था के कार्बन पदचिन्ह को कम करना, स्थानीय खाद्य व्यवस्था और अर्थव्यवस्था का निर्माण, उचित मूल्य और बाजार सुनिश्चित करना, वित्तीय जोखिम को कम करना, खाद्य गुणवत्ता और सुरक्षा में सामूहिक भागीदारी को प्रोत्साहित करना, रोजगार के अवसर प्रदान करना, और तकनीकी व प्रबंधन क्षमताओं का विकास, इत्यादि। कृषि सहकारिता में यह क्षमता होती है कि वह सुपर मार्केट के अधिपत्य को चुनौती दे सके। साथ ही यह गुणवत्ता के सामान, सेवाएं तथा अन्य अवसर गरीबों को उपलब्ध करा सकते हैं।

ऐसे प्रयासों और खाद्य संप्रभुता को मजबूत सरकारी एवं सामाजिक समर्थन के साथ–साथ उपयुक्त नीतियों की भी आवश्यकता पड़ती है। छोटे उत्पादकों की सबसे बड़ी चुनौतियां हैं – भंडारण, मूल्य निर्धारण, बिक्री, वित्त या ऋण की उपलब्धता, सामाजिक सेवा और सुरक्षा, और जोखिम व आपदाओं के खिलाफ बीमा, इत्यादि। उपयुक्त आधारिक संरचना और सेवाओं के अभाव में छोटे उत्पादक आसानी से व्यापारियों, सूदखोरों और दलालों के चंगुल में फंस जाते हैं। सरकार को चाहिए कि वह स्थानीय और राष्ट्रीय बाजार को डम्पिंग (dumping)[x], जमाखोरी (hoarding) और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की सट्टेबाजी से सुरक्षा प्रदान करे, जिन्हें मुक्त व्यापार समझौतों का समर्थन प्राप्त है। इसके साथ–साथ खाद्य एवं रसायन कंपनियों और उनके दलालों के ऊपर भी कड़े प्रतिबंध लगने चाहिए। सरकार को छोटे उत्पादकों के लिए उचित दाम, सीधी मार्केटिंग, ग्रामीण एवं शहरी सहकारी समितियों के बीच संपर्क और सहयोग, और स्थानीय छोटे उत्पादकों से सरकारी खरीद इत्यादि की गारंटी सुनिश्चित करनी चाहिए।

'लोगों की खाद्य संप्रभुता' छोटे खाद्य उत्पादकों, श्रमिकों और उन सभी के लिए एक आह्वान है जो भुखमरी और गैर–बराबरी मिटाने, पर्यावरण बचाने के लिए प्रतिबद्ध हैं और गरिमा तथा आत्म–निर्णय को दुबारा हासिल करना चाहते हैं। इसकी मदद से हम कॉरपोरेट नियंत्रित कृषि व्यवस्था को बदल सकते हैं जो केवल मुनाफा के बारे में सोचती है। सामूहिकता एवं सहकारिता, इन प्रयासों के केंद्र में हैं; विशेष रूप से महिलाओं के लिए, जो पूंजीवादी व्यवस्था में भी उतनी ही हाशिए पर हैं जितनी कि वो सामंतवाद और राज्य केंद्रित समाजवाद के अंदर थीं। जीवन, कुशलता, फायदे, लाभ, स्वास्थ्य, खुशी इत्यादि की पुनःकल्पना, उस

आत्म–केंद्रित व्यक्तिवाद को चुनौती देती है जिसे नवउदारवाद प्रोत्साहित करता है। यह एक जवाबदेह और नैतिक वित्तीय व्यवस्था, उत्पादन और वितरण में नवीनीकरण, महिला नेतृत्व की स्वायत्तता के विकास को और संभव बनाता है।

शालमली गुट्टल
कार्यकारी निदेशक
फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ

---

[i] *Sustainable Peasant and Family Farm Agriculture Can Feed the World. https://viacampesina.org/downloads/pdf/en/paper6-EN-FINAL.pdf*

[ii] *http://www.fao.org/hunger/en/*

[iii] *https://www.wfp.org/hunger/who-are*

[vi] *Sustainable Peasant and Family Farm Agriculture Can Feed the World. https://viacampesina.org/downloads/pdf/en/paper6-EN-FINAL.pdf*

[v] *Making Agroecology Viable for Small Farmers: Experiences from the Fieldhttp://focusweb.org/content/making-agroecology-viable-small-farmers-experiences-field*

Handbook on Agroecology: Farmer's Manual on Sustainable Practiceshttp://focusweb.org/content/handbook-agroecology-farmers-manual-sustainable-practices-0

[vi] *With Climate Chaos, Who Will Feed Us? The Industrial Food Chain? Or the Peasant Food Web? http://www.etcgroup.org/content/who-will-feed-us-0*

[vii] *https://www.idrc.ca/en/article/facts-figures-food-and-biodiversity*

[viii] *Hungry for Land. https://www.grain.org/article/entries/4929-hungry-for-land-small-farmers-feed-the-world-with-less-than-a-quarter-of-all-farmland*

[ix] *https://nyeleni.org/spip.php?article290*

[x] *डम्पिंग', अर्थात् विकसित देशों द्वारा अपने माल से अन्तर्राष्ट्रीय (खासतौर से अविकसित और विकासशील) बाजार को भरना और कम कीमत पर बेचना*

भूमिका

जब से भारतीय किसानों का वैश्विक कृषि बाजार के साथ एकीकरण हुआ है, उनकी आजीविका के ऊपर संकट छा गया है। इस भूमंडलीकृत खाद्य व्यवस्था में जहां बड़ी कंपनियों का राज है, छोटे स्तर की खेती आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं रही क्योंकि वैश्विक आर्थिक नीतियां इनके खिलाफ हैं। उदाहरण के रूप में, विश्व बैंक के 'ढांचागत समायोजन कार्यक्रम' (Structural Adjustment Programme) और विश्व व्यापार संगठन के तर्ज पर व्यापार उदारीकरण ने भारत को अपने कृषि बाजार को विदेशी कृषि उद्योगों के लिए खोलने को मजबूर कर दिया। कृषि व्यापार कंपनियों को अमेरिका जैसे औद्योगिक देशों में भारी सब्सिडी मिलती है। वह सस्ते दामों में भारी मात्रा में उत्पादन कर सकते हैं। व्यापार के नियमों ने भारत को अपनी आयात प्रशुल्क कम करने के लिए मजबूर कर दिया ताकि बड़े कृषि उद्योग अपने सस्ते माल को भारत में बेच सकें। भारत के बाजार में सस्ते कृषि उत्पादों की डम्पिंग[1] के कारण स्थानीय बाजार में कृषि उत्पादों के दाम गिर गए और इससे स्थानीय किसानों को काफी परेशानियों का सामना करना पड़ा। एक तरफ बाजार की कीमतें गिर रही थीं दूसरी तरफ कृषि सामग्रियों के दाम बढ़ते जा रहे थे। कई कृषि सामग्रियों (जैसे बीज, खाद, इत्यादि) का निजीकरण हो गया और उनके दाम बढ़ गए जिससे छोटे किसानों की आमदनी पर संकट छा गया। इस तरह की कई अनुचित नीतियों के कारण आज के भूमंडलीकृत बाजार में छोटे किसानों का टिक पाना बहुत मुश्किल हो गया है।

कई शोध[2] यह दर्शाते हैं कि छोटे खेत दरअसल बड़े खेतों से ज्यादा फायदेमंद होते हैं, लेकिन फिर भी सब इनके खिलाफ हैं। भारतीय किसान आत्महत्या कर रहे हैं क्योंकि अपने कर्ज को चुकाने के लिए उनके पास पर्याप्त आमदनी नहीं है। करीब 84 प्रतिशत भारतीय किसान भूमिहीन, सीमांत या छोटे किसानों की श्रेणी में आते हैं। अपने उत्पादों को बेचने के लिए व्यवस्थित बाजार तक उनकी पहुंच नहीं है। कृषि के लिए ऋण की उपलब्धता उनके लिए नहीं के बराबर है। इसी प्रकार, ग्रामीण इलाकों में गैर–कृषि गतिविधियों के लिए भी ऋण उपलब्ध नहीं है। पूरी की पूरी ग्रामीण अर्थव्यवस्था संकट से गुजर रही है। कृषि गैर–लाभकारी होती जा रही है। इसलिए किसान अब इसे छोड़ने के बारे में सोच रहे हैं। NSSO सर्वे के अनुसार करीब 40 प्रतिशत भारतीय किसान मौका मिलने पर कृषि छोड़ना चाहते हैं।[3]

इन स्थितियों में महिलाएं और भी ज्यादा प्रभावित हैं। अधिकांश मामलों में उनके पास कोई जमीन नहीं है और ऋण की बात तो छोड़ ही दें। ऐसे में परिवार की जरूरतों को पूरा करना उनके लिए और भी मुश्किल हो जाता है। दूसरी तरफ जमीन के टुकड़े होते जा रहे हैं। धीरे–धीरे खेतों का आकार घटता जा रहा है। जैसे–जैसे जनसंख्या में वृद्धि हो रही है अगर गैर–कृषि रोजगार पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हुए तो खेत

---

[1] 'डम्पिंग', अर्थात् विकसित देशों द्वारा अपने माल से अन्तर्राष्ट्रीय (खासतौर से अविकसित और विकासशील) बाजार को भरना और कम कीमत पर बेचना

[2] शोध दर्शाते हैं कि छोटे खेत बड़े खेतों से ज्यादा उत्पादन देते हैं। भूमि की प्रति इकाई के ऊपर कृषि का कुल उत्पादन बहुत ज्यादा होता है। बड़े खेतों में सिर्फ एक ही फसल की खेती होती है, पर एक छोटे खेत में उसी जमीन पर कई फसलों को लगाया जाता है। इसके अलावा एक–फसली को सिर्फ बाजार में बेचने के लिए लगाया जाता है जबकि छोटे खेतों से कई चीजें प्राप्त होती हैं, जैसे – भोजन, दवाई, पशु, चारा, लकड़ी इत्यादि। मोनोकल्चर खेती में ज्यादा रसायनों और कीटनाशकों का छिड़काव करना पड़ता है और इसलिए ये छोटे खेतों की तुलना में ज्यादा खर्चीले होते हैं।

[3] Murray, E. 2008. Producer Company Model : Opportunities for Bank Finance. Cab Calling.

पीढ़ी–दर–पीढ़ी और छोटे होते जाएंगे। उदाहरण के लिए, अगर एक परिवार के पास 5 एकड़ जमीन है और उसके 5 बच्चे हैं तो उस जमीन को उसे 5 बच्चों में बांटना होगा। प्रत्येक बच्चे को 1 एकड़ की जमीन प्राप्त होगी। यह घटना अगली पीढ़ी में फिर से दोहराई जाएगी। इस प्रकार लगातार भूमि विखंडन हो रहा है जिसका सीधा संबंध किसानों की आमदनी से है। भारत में औसत परिचालन जोत वर्ष 1970–71 में 2.28 हेक्टेअर था जो तेजी से घटते–घटते वर्ष 2010–11 में 1.16 हेक्टेयर हो गया।[4] इसलिए कई लोग यह तर्क देते हैं कि सहकारी समितियों के माध्यम से अगर व्यक्तिगत भूमि को जोड़ कर संयुक्त खेती की जाए तो संसाधनहीन किसानों के पास बाजार में कामयाब होने का एक अवसर होगा।[5] खेती, पशुपालन, डेयरी से जुड़े बाजार की सफलताओं के अलावा भी यह किसानों को मूल्य श्रृंखला में ऊपर उठने में मदद कर सकता है। अपने खुद की प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना कर या सीधे उपभोक्ताओं को खुदरा बिक्री के जरिए छोटे किसान कृषि संकट से उभर सकते हैं।

भारत में 1990 के दशक से शुरू हुई आर्थिक उदारीकरण नीतियों के समय से यह समस्या रही है कि कृषि उत्पादों में मूल्य–संवर्धन (value addition) केवल उत्पादन के बाद ही होता है। ज्यादातर भारतीय किसान मूल्य–संवर्धन की प्रक्रिया से बाहर हैं और अपने उत्पाद को कच्चे माल के रूप में ही बेचते हैं। इसीलिए मूल्य–संवर्धन से होने वाले मुनाफे से ये वंचित रह जाते हैं। तालिका–1 में हम किसान को दिया गया भुगतान और खुदरा बिक्री मूल्य के बीच का अंतर देख सकते हैं। इस प्रकार एक किसान मूल्य–संवर्धन के जरिए अपने उत्पाद की अंतिम कीमत में अपना हिस्सा बढ़ा सकते हैं। इसे ऐसे समझें कि गुड़ बेचना गन्ना बेचने से ज्यादा फायदेमंद है; या घी बेचना दूध बेचने से ज्यादा फायदेमंद है। खेती को किसानों के लिए ज्यादा फायदेमंद बनाने के लिए यह एक प्रमुख उपाय हो सकता है। इसकी मदद से स्थानीय खाद्य व्यवस्था को ज्यादा स्वायत्त भी बना सकते हैं।

तालिका 1 : किसानों के पारिश्रमिक में असमानता

	टमाटर	आलू	पत्ता गोभी	फूल गोभी	केला
उपभोक्ता द्वारा भुगतान की गई कीमत (रुपये प्रति किलो)	8.20	12.00	9.00	9.50	12.00
किसान को प्राप्त कीमत (रुपये प्रति किलो)	2.00	6.60	5.00	5.50	4.00
किसान द्वारा मूल्य बोध (उपभोक्ता द्वारा भुगतान की गई कीमत के प्रतिशत में)	24%	55%	56%	58%	33%
उपभोक्ता द्वारा भुगतान की गई कीमत और किसानों द्वारा प्राप्त कीमत का प्रतिशत	310%	82%	80%	73%	200%

स्त्रोत : *Murray, E. 2008. Producer Company Model : Opportunities for Bank Finance. Cab Calling.*

[4] *Kulkarni, V. 2012. Agricultural lands fragment further in five years | Business Line [online]. The Hindu. Available from: http://www.thehindubusinessline.com/economy/agri-business/agricultural-lands-fragment-further-in-five-years/article4071210.ece.*

[5] *Singh, S. and T. Singh. 2012. Producer companies in India: a study of organisation and performance. Draft report submitted to MoA, GoI. IEG, Delhi.*

सहकारी समितियों की खूबियों के रूप में व्यापार की वर्धित संभावना, मार्केटिंग और वैश्विक बाजार में बने रहने की क्षमता को प्रोत्साहित किया गया है। पर यह भी महत्वपूर्ण है कि उत्पादक सहकारी समितियों को केवल व्यापार उद्यम के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि उन्हें ग्राम अर्थव्यवस्था और स्वायत्तता के व्यापक संदर्भ में देखने की जरूरत है। गांव की अधिकतर जरूरतें जैसे भोजन से लेकर सौंदर्य सामग्रियों तक, दवाइयों से लेकर औजारों तक का सहकारी समितियों द्वारा स्थानीय रूप से उत्पादन किया जा सकता है। इससे गांव आत्मनिर्भर बन सकते हैं और स्थानीय अर्थव्यवस्था मजबूत होगी।

जहां आज पारंपरिक, ऊपर से नीचे के दृश्टिकोण वाली और सरकार द्वारा संचालित सहकारी समितियां राजनीतिकरण और अभिजात वर्ग के नियंत्रण जैसी समस्याओं से ग्रस्त हैं वहीं नए कानून और धरातल पर किए जा रहे नए प्रयासों के फलस्वरूप नई दौर की उत्पादक समितियां भी उभर रही हैं।

भारत में सहकारी आंदोलन का एक शताब्दी पुराना इतिहास है। औपनिवेशिक काल के भी पहले से छोटे किसान हमेशा सामंती व्यवस्था के अंतर्गत जमीदारों के शोषण का शिकार होते आए हैं और सूदखोरों द्वारा सताए जाते रहे हैं। उन्हें बार–बार सूखा और अन्य आपदाओं का भी सामना करना पड़ा है। यही वजह थी कि प्रगतिशील औपनिवेशिक अधिकारियों ने भारत में सहकारी समिति की शुरुआत की। उन दिनों सहकारी समितियों का सारा ध्यान ऋण के ऊपर टिका हुआ था। भारत का पहला सहकारी समिति कानून वर्ष 1904 में बना जिसे 'सहकारी ऋण समिति अधिनियम (कोआपरेटिव क्रेडिट सोसाइटी एक्ट), 1904' कहा गया। बाद में सहकारी समितियों का विस्तार किया गया और उन्हें अन्य गतिविधियों, जैसे – उत्पादन, वित्त, मार्केटिंग और प्रसंस्करण के साथ–साथ कई महत्वपूर्ण कृषि उत्पादों के व्यापार, उपभोक्ता स्टोर, और आवास इत्यादि के साथ जोड़ा गया।[6]

1 : छोटे, सीमांत उत्पादकों और महिलाओं के लिए सामूहिक उत्पादन की संभावनाएं

चाहे वह संयुक्त खेती हो, सेवाएं हों या अन्य क्षेत्र हों, समूह बनाने के अनेक फायदे हैं। समूह की मदद से किसान संयुक्त रूप से मशीन और बीज में निवेश, जमीन को पट्टे पर लेना, कुआं खोदना, और उत्पादन और मार्केटिंग से जुड़े सभी कार्यों में एक दूसरे के साथ जुड़ सकते हैं। मात्रा अधिक होने के कारण सहकारी समिति के किसानों को खरीदने या बेचने में ज्यादा फायदा मिल सकता है। इसके अलावा खरीददार और विक्रेता, दोनों को लेनदेन में कम लागत आती है। एकजुट होकर सभी के लिए बड़ी आसानी से उत्पादन, प्रसंस्करण और मार्केटिंग के लिए तकनीकी सहायता प्राप्त की जा सकती है।[7]

आसपास रहने वाले किसान सहज रूप से अलग–अलग कार्यों में एक दूसरे के साथ जुड़ सकते हैं। इसी प्रकार वे संयुक्त खेती भी कर सकते हैं। इससे उनकी सामूहिक सौदेबाजी (collective bargaining) की क्षमता भी बढ़ जाती है। जहां शोषण सामान्य है वहां अकेले व्यक्तिगत रूप से काम करना और मुश्किल हो जाता है। अधिकांश महिला किसान, भले ही वो कृषि का ज्यादातर काम करती हों, पर उनके पास जमीन नहीं है। उत्पादक समूह बनाकर उन्हें जमीन को पट्टे पर लेने का और अन्य सेवाओं को प्राप्त करने का अवसर मिल

---

[6] *Vaidyanathan, A. 2013. Future of Cooperatives in India. Economic and Political Weekly, xlviIi(18), 30–4.*

[7] *Singh, S. and T. Singh. 2012. Producer companies in India: a study of organisation and performance. Draft report submitted to MoA, GoI. IEG, Delhi.*

जाता है। समूह के रूप में संगठित होने पर किसानों की सरकार तक पहुंच आसान हो जाती है। ऐसे में वे शोषण वाली स्थितियों से बचने में कामयाब हो जाते हैं। उदाहरण के लिए ठेका खेती व्यवस्था ही ले लें। भारत में कंपनी और व्यक्तिगत किसानों के बीच ठेका खेती व्यवस्था (Contract Farming) अब आम होती जा रही है। यह एक गंभीर मुद्दा है क्योंकि कई बार निजी किसानों को ठेका की शर्तों का सही ज्ञान नहीं होता है जिससे कंपनियां सारा जोखिम किसानों के ऊपर डाल देती हैं और सारा मुनाफा खुद हड़प लेती हैं। इस तरह की स्थितियों से समूह बनाकर बचा जा सकता है। दूसरी तरफ, समूह की मदद से एक दूसरे की कुशलता, हुनर, प्रतिभा और ज्ञान को एक साथ जोड़कर ज्यादा फायदा उठाया जा सकता है।

कई लोग तो यह भी कहते हैं कि छोटे किसान केवल प्राथमिक उत्पादक समूह बना कर ही भूमंडलीकरण और आधुनिक प्रतिस्पर्धात्मक बाजार के बुरे प्रभावों से बच सकते हैं।[8]

भारत में सामूहिकता के कई मॉडल मौजूद हैं – जैसे पारंपरिक सरकार द्वारा संचालित सहकारी समिति, नए दौर की किसान उत्पादक कंपनी, परस्पर सहायता सहकारी समिति (Mutually Aided Cooperative Society), बहु–प्रचलित स्वयं सहायता समूह, इत्यादि। ऐसे कई कानून हैं जिनके तहत इन समूहों का गठन किया जा सकता है। इसलिए समूह बनाने के लिए उपयुक्त कानून और सही ढ़ांचा का चयन काफी महत्वपूर्ण है। समूह की कामयाबी इसी पर टिकी है।

इस पुस्तिका का मकसद भारत के उत्पादक समूहों के बारे में जानकारी देने का है जो सहकारी आंदोलन का हिस्सा रहे हैं। कुछ सफल संगठनों और उनकी अलग–अलग सांगठनिक विशेषताओं को भी हम जानने की कोशिश करेंगे जिन्हें विभिन्न कानूनों के तहत बनाया गया है। इससे ग्रामीण समूहों की विविधता का भी एक अंदाजा लगाया जा सकेगा। शुरुआत भूमिका से की गई है जिसमें हम सहकारिता के सिद्धांत, ऊपर से नीचे बनाम नीचे से ऊपर के दृष्टिकोण वाले संयुक्त खेती के मॉडल में अंतर, उनका संक्षिप्त इतिहास और सरकार नियंत्रित सहकारी समितियों की चुनौतियों के बारे में जानेंगे। अगले भाग में हम सहकारिता से जुड़े अलग–अलग कानून और अधिनियम के बारे में जानेंगे। तीसरी चरण में हम नए दौर की सहकारी समितियों, जैसे – उत्पादक कंपनी और स्वयं सहायता समूह के बारे में जानेंगे जो पूरे देश में फैले हुए हैं। अंत में हम पांच विशेष केस स्टडी देखेंगे। पहली केस स्टडी 'धारानी उत्पादक समिति' की है जो एक पसस्पर सहायता सहकारी समिति है। यह तेलंगाना के अनंतपुर जिले में टिमबकटू कलेक्टिव का हिस्सा है। दूसरी केस स्टडी केरल सरकार द्वारा समर्थन प्राप्त 'कुडुम्बश्री' कार्यक्रम के बारे में है जो महिलाओं का एक विशाल संगठन है और केरल के 50 प्रतिशत से ज्यादा परिवार इसमें शामिल हैं। इस कार्यक्रम के तहत संयुक्त खेती, मूल्य–संवर्धन और स्वयं सहायता समूह की मदद से अति लघु उद्योगों का गठन किया गया है। तीसरी केस स्टडी 'गंभीरा संयुक्त खेती सोसाइटी' की है जो गुजरात का एक कामयाब संयुक्त खेती का मॉडल पेश करती है। उसके बाद हम 'डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी' के बारे में जानेंगे, जो तेलंगाना के मेडक जिले में केवल दलित महिलाओं का समूह है जो खाद्य सुरक्षा के लिए पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए संयुक्त खेती करते हैं। पांचवी केस स्टडी 'वसुंधरा एग्री–होर्टी प्रोड्यूसर कंपनी' की है जो महाराष्ट्र की एक कामयाब कंपनी है। सबसे अंत में महत्वपूर्ण जानकारियों को दोहराया गया है।

---

[8] *Trebbin, A. and M. Hassler. 2012. Farmers' Producer Companies in India: A New Concept for Collective Action? Environment and Planning A, 44(2), 411–27.*

2 : सहकारी समिति क्या है और सहकारिता के सिद्धांत क्या हैं ?

''सहकारी समिति' लोगों के स्वायत्त संगठन हैं जो स्वेच्छा से अपने आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जरूरतों और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए एक संयुक्त–स्वामित्व वाले और लोकतांत्रिक तरीके से नियंत्रित उद्यम के माध्यम से एक साथ जुड़ते हैं।''[9]

किसी भी सहकारी समिति का ह्रदय उसका 'सदस्य' होता है। सहकारी समितियों का सबसे बड़ा सिद्धांत है – सदस्यों का स्वामित्व, सदस्यों का नियंत्रण, और सदस्यों का मुनाफा। अर्थात, जो लोग सहकारी समिति में पूंजी लगाते हैं उन्हीं का स्वामित्व होता है; जो इसका इस्तेमाल करते हैं उनका ही नियंत्रण होता है; और वे ही इससे मुनाफा प्राप्त करते हैं। इन सिद्धांतों के आधार पर सहकारी समितियां उन कंपनियों से भिन्न होती हैं जिनका आधार केवल मुनाफा कमाना होता है।

लाभप्रदता जरूरी है पर समूह के व्यापक हित को ध्यान में रखते हुए इसका अन्य सिद्धांतों के साथ संतुलन बना कर रखा जाना चाहिये जैसे – स्वयं–सहायता/स्वायत्तता, लोकतंत्र, बराबरी, न्यायसम्य और एकजुटता को सार्वभौमिक रूप से सहकारिता का आधार माना गया है। सहकारिता के मुख्य सिद्धांत इस प्रकार हैं :

1. स्वेच्छापूर्ण (Voluntary) और खुली सदस्यता

सहकारी समितियां ऐसे स्वैच्छिक संगठन होते हैं जो हर उस व्यक्ति के लिए खुले होते हैं जो उनकी सेवाओं का इस्तेमाल करना चाहते हैं और सदस्यता की जिम्मेदारियों को स्वीकार करने को तैयार हैं। इनमें किसी प्रकार का लिंग, जाति, नस्ल, राजनीतिक या धार्मिक भेदभाव नहीं किया जाता है। यह काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि ऐसे कुछ मामले सामने आए हैं जहां सदस्यों के ऊपर उनकी इच्छा के खिलाफ जुड़ने के लिए दबाव डाला गया है।

2. सदस्यों द्वारा लोकतांत्रिक नियंत्रण

सहकारी समितियां लोकतांत्रिक संगठन होते हैं जिन पर उसके सदस्यों का नियंत्रण होता है जो सक्रिय रूप से उसकी नीतियों को बनाने और निर्णय निर्धारण प्रक्रिया में भाग लेते हैं। प्राथमिक सहकारी समितियों में सभी सदस्यों के पास वोटिंग के बराबर अधिकार होते हैं (एक सदस्य, एक वोट)। अन्य स्तरों पर भी सहकारी समितियां लोकतांत्रिक रूप से ही संगठित होती हैं।

3. सदस्यों की आर्थिक सहभागिता

सभी सदस्य समिति में समान रूप से पूंजी का योगदान देते हैं और लोकतांत्रिक रूप से उसका नियंत्रण करते हैं। इस पूंजी का एक हिस्सा अक्सर सहकारी समिति की साझा संपत्ति होता है। सदस्यता पाने की शर्त के रूप में जो पूंजी जमा की जाती है उसपर उन्हें सीमित मुआवजा मिलता है। कुछ पैसों को सदस्य अन्य उद्देश्यों के लिए अलग रख देते हैं जैसे – समिति के विकास के लिए, संभवतः कुछ पैसे जमा करके, जिसका एक हिस्सा अविभाज्य होता है; सदस्यों द्वारा समिति से किए गए लेनदेन के अनुपात में उनको फायदा

[9] *International Co-operative Alliance. n.d. What is a co-operative? [online]. http://ica.coop. Available from: http://ica.coop/en/what-co-operative.*

पहुंचाने के लिए; और सदस्यों द्वारा अनुमोदित अन्य गतिविधियों के लिए जैसे – ग्राम विकास, सदस्यों की शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं इत्यादि।

4. स्वायत्तता और आत्मनिर्भरता

सहकारी समितियां स्वायत्त, स्वयं सहायता संगठन होते हैं जिसका नियंत्रण उनके सदस्यों के हाथ में होता है। किसी संगठन या सरकार के साथ समझौता करते समय या बाहरी स्रोतों से पूंजी इकट्ठा करते समय सहकारी समितियां इस बात का ध्यान रखती हैं कि उनकी स्वायत्तता और उनके सदस्यों का लोकतांत्रिक नियंत्रण बना रहे।

5. शिक्षा प्रशिक्षण और जानकारी

सहकारी समितियां अपने सदस्यों, चयनित प्रतिनिधियों, प्रबंधकों और कर्मचारियों को शिक्षा के साथ–साथ प्रशिक्षण भी प्रदान करते हैं जिससे वे समिति के विकास में प्रभावी ढंग से अपना योगदान कर सकें।

6. सहकारी समितियों के बीच सहयोग

स्थानीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय संरचना के माध्यम से सहकारी समितियां अपने सभी सदस्यों का प्रभावी रूप से मदद करती है और सहकारी आंदोलन को एकजुट होकर सशक्त बनाती है।

7. समुदाय की चिंता

अपने सदस्यों द्वारा अनुमोदित नीतियों की मदद से सहकारी समितियां हमेशा अपने समुदाय की बेहतरी के लिए कार्य करती हैं।

3 : ऊपर से नीचे का दृश्टिकोण बनाम नीचे से ऊपर के दृष्टिकोण वाले संयुक्त खेती के मॉडल – कुछ इतिहास[10]

ऐतिहासिक रूप से पूरे विश्व में कृषि समूह दो तरह के हुए हैं – (1) संयुक्त खेती समूह; और (2) सेवा समूह (जैसे ऋण, सामग्री या मार्केटिंग के लिए)। जहां उत्पादन सहकारी समिति बहुत हद तक असफल रही हैं वहीं सेवा सहकारी समितियों को अपेक्षाकृत ज्यादा कामयाबी मिली है।

संयुक्त खेती मुख्य रूप से समाजवादी सामूहिकता से जुड़ी थी (जैसे यू.एस.एस.आर., चीन में) परंतु अन्य देशों में भी इनके उदाहरण मिलते हैं, जैसे 1960 के दशक में लैटिन अमेरिका में निकारागुआ, अफ्रीका में इथियोपिया एवं तंजानिया, और पश्चिम एशिया में इजरायल (किबुत्ज़)। इन सभी के अलग–अलग अनुभव रहे हैं पर सभी में एक बात समान थी। इनमें अक्सर ऊपर से नीचे का दृष्टिकाण रहा है न कि नीचे से ऊपर का।

ऊपर से नीचे के दृश्टिकोण वाले सामूहीकरण की कुछ नकारात्मक विशेषताएं इस प्रकार हैं :

1. किसानों की खेत को दबाव पूर्वक जमा करना; कई बार यह किसानों की स्वेच्छा से नहीं होता था;

---

[10] यह भाग बीना अग्रवाल के लेख के एक अंश का सारांश है (Agarwal, B. 2010. Rethinking Agricultural Production Collectivities. Economic & Political Weekly, xlv (9), 64–78.

2. उत्पादन का अनिवार्य समायोजन;

3. उत्पादन उद्यम आकार में बहुत बड़े थे; इस वजह से प्रबंधन से जुड़े निर्णयों में किसान अपना पक्ष नहीं रख पाते थे;

4. प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में सामाजिक–आर्थिक गैर–बराबरी जिसमें लिंग असमानता भी शामिल है। समाज में व्याप्त गैर–बराबरी की झलक इन उद्यमों में भी दिखती थी। जैसे महिलाएं ज्यादा श्रम करती थी और उन्हें कम मुआवजा मिलता था और वे अपनी बात नहीं रख पाती थीं।

1960 और 1970 के दशक में अन्य देशों में भी सामूहीकरण की शुरुआत छोटे किसान के पक्ष में हुए भूमि सुधार कार्यक्रमों से हुई। परंतु उस वक्त मान्यता यह थी कि बड़े खेत ज्यादा कारगर हैं। इसलिए या तो छोटे–छोटे खेतों को जोड़कर बहुत बड़े उत्पादन सहकारी समितियों का गठन किया गया (जैसे इथियोपिया और तंजानिया में) या फिर राज्य ने सारी जमीन को जब्त करके बड़े पैमाने के उत्पादन सहकारी समितियों का गठन किया (जैसे निकारागुआ, इक्वाडोर और इज़राइल में)। भले ही इनकी शुरुआत स्वेच्छाधीनता की भावना से की गई हो पर अक्सर इन प्रक्रियाओं में बेहतर क्रियान्वयन के लिए राज्य का दबाव शामिल था। उद्यमों का आकार बहुत बड़ा होने के कारण और प्रबंधन दृष्टिकोण ऊपर से नीचे होने से बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ा था।

इनके गठन में वर्ग, लिंग या अन्य सामाजिक भिन्नताओं को आमतौर पर नजरअंदाज किया जाता है; इसलिए सामूहीकरण के प्रयासों में अक्सर इन असमानताओं की झलक दिख जाती है। यहां तक कि उन मामलों में जहां प्रत्येक परिवार को एक सदस्यता दी गई है, वहां केवल पुरुष सदस्य ही समूह से जुड़ी निर्णय प्रक्रिया में भाग लेते हैं।

एक अलग तरह की सहकारी समिति !

ऊपर से नीचे की दृष्टिकोण वाली सहकारी समितियों की कमियों की समीक्षा करने के बाद हम एक अलग तरह के सामूहिक उद्यम की कल्पना कर सकते हैं – जैसे एक ऐसी समिति जहां हर एक को कहने का अधिकार हो; जिसका आकार इतना छोटा हो कि सभी सदस्य निर्णय प्रक्रिया में शामिल हो सकें; और जहां कमजोर का शोषण न किया जाए। इन्हें हम नीचे से ऊपर के दृष्टिकोण वाले समूह कह सकते हैं। जिन देशों में विशाल सहकारी समितियों को छोटा बना दिया गया था, वहां अधिकतर किसान या तो छोटे समूह के साथ बने रहे या फिर उन्होंने नीचे से ऊपर के दृष्टिकोण वाले नए समूहों का गठन किया। इससे यह पता चलता है कि दृष्टिकोण बदलने से सहकारी समितियों में संभावनाएं और क्षमताएं काफी बढ़ जाती हैं।

सहकारी समिति में नीचे से ऊपर का दृष्टिकोण सुनिश्चित करने के लिए हम कुछ नए सिद्धांतों को जोड़ सकते हैं :

- छोटे समूह : बड़े समूहों में अक्सर मुख्य उद्देश्यों को पूरा करने में समस्याएं आती है, जैसे सामूहिक निर्णय लेने के समय

- सामाजिक–आर्थिक समानता या सदस्यों के बीच सामाजिक घनिष्टता : यह इसलिए महत्वपूर्ण है

ताकि सामाजिक असमानता को बुराईओं से समिति बची रहे। इसके अलावा सिर्फ महिला सदस्यों की सहकारी समितियां ज्यादा अच्छा कार्य कर सकती हैं क्योंकि इनमें महिलाएं आगे होंगी वरना उन्हें पुरुषों के सहायक के रूप में ही देखा जाता है और आमतौर पर पुरुष ही सहकारी समितियों के सदस्य बनते हैं। सहकारी समितियां केवल सीमांत किसानों या कृषि मजदूरों से बनी हो तो अच्छा रहता है। बड़े भूमिदारों और छोटे किसानों को एक ही समिति में रखने से छोटे किसान और मजदूरों के शोषण की संभावनाएं बढ़ जाती हैं।

- स्वेच्छाधीनता : सदस्यों के पास इतनी छूट होनी चाहिए कि वे आसानी से किसी भी समिति के साथ जुड़ सकें या उसे छोड़ सकें

- निर्णय–निर्धारण प्रक्रिया में सहभागिता : सारे प्रमुख निर्णय सभी सदस्यों के साथ मिलकर लिए जाने चाहिए

- 'मुफ्त सवारी' और जिम्मेदारियों से भागने की रोकथाम के लिए नियंत्रण एवं दंड : 'मुफ्त सवारी' का अर्थ है कि कुछ लोग बाकी लोगों की तुलना में कम काम करते हों पर उन्हें भी सभी के बराबर फायदा मिल रहा हो। इस स्थिति में सहकारिता के प्रयास विफल हो जाते हैं क्योंकि कुछ लोगों के ऊपर ज्यादा काम का दबाव आ जाता है और बाकी लोग अपनी जिम्मेदारियों से भागते रहते हैं। यह आम तौर पर बड़े सहकारी समितियों में ज्यादा होता है क्योंकि वहां लोग एक दूसरे को ठीक से नहीं जानते हैं और अनजान सदस्यों के प्रति कर्तव्य का भाव महसूस नहीं करते। लेकिन जब समूह छोटा होता है तो सारे सदस्य एक दूसरे के ऊपर आसानी से नजर रख सकते हैं और उनमें एक दूसरे के प्रति जिम्मेदारी का भाव रहता है क्योंकि समूह छोटा होने के कारण लोग एक दूसरे से रोजाना मिलते रहते हैं।

- मुनाफा के ऊपर समूह का नियंत्रण : लाभ या आमदनी को खर्च करने के ऊपर पारदर्शिता रखी जाय।

भारत में सहकारी आंदोलन के सामने यह चुनौती है कि इस प्रकार के नीचे से ऊपर के दृष्टिकोण वाले और ज़मीनी उत्पादक समूहों को प्रोत्साहित कैसे किया जाए। भारत में अधिकतर सहकारी समितियों का ऊपर से नीचे का दृष्टिकोण रहा है, जिससे सही मायने में सहकारी समितियों की संभावनाएं और क्षमताएं से यह देश वंचित रहा है। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि इस ऊपर से नीचे के दृष्टिकोण के कारण सहकारी समितियां सही मायने में जमीनी आंदोलन नहीं बन पाई है जो सहकारी उद्यम की भावना और संस्कार से प्रेरित हो।[11] पर अच्छा समाचार यह है कि हमारे पास सफलताओं की कई कहानियां हैं जिन्हें हम आगे इस पुस्तिका में पढ़ेंगे। यह आवश्यक है कि एनजीओ और राज्य की मदद से सामाजिक आंदोलनों और समुदायों द्वारा इस तरह के प्रयासों का और ज्यादा प्रोत्साहन किया जाए पर यह ध्यान रहे इससे किसी प्रकार की निर्भरता न पैदा हो।

---

[11] *Vaidyanathan, A. 2013. Future of Cooperatives in India. Economic and Political Weekly, xlviIi(18), 30–4.*

भारत में कार्यरत सहकारी समितियों के विभिन्न प्रकार[12] :

1. **उत्पादन सहकारी समिति** : इनका संबंध खेती या औद्योगिक क्षेत्र में संयुक्त उत्पादन के साथ होता है। कृषि में छोटे और सीमांत किसान एक साथ मिलकर संयुक्त खेती कर सकते हैं और संयुक्त खेती समिति का गठन कर सकते हैं, जिसमें वे अपने भूमि संसाधनों को एक साथ जोड़ सकते हैं या किसी जमीन को सहकारी समिति के लिए पट्टे पर ले सकते हैं।

2. **प्रसंस्करण (Processing) सहकारी समिति** : इनका संबंध कृषि उत्पाद का संयुक्त प्रसंस्करण के साथ होता है। आज भारत में हजारों सहकारी समितियां हैं जो चीनी उत्पादन, डेयरी, धान कुटाई, मूंगफली छीलना, खोपरा और तिलहन पेरना, फलों, सब्जियों, चाय और जूट इत्यादि का संयुक्त प्रसंस्करण कर रही हैं। गन्ना और दुग्ध उद्योग, दोनों ही सहकारी आंदोलन की सफलताओं की निशानी हैं। इन दोनों में प्रसंस्करण और मार्केटिंग की जाती है, पर संयुक्त उत्पादन नहीं किया जाता।

3. **मार्केटिंग सहकारी समिति** : यह समिति कृषि उत्पादों के मार्केटिंग का काम करती है जैसे 'कृषि मार्केटिंग समिति और उपभोक्ता सहकारी समिति'। 'भारत की राष्ट्रीय कृषि सहकारी समिति मार्केटिंग फेडरेशन' (नाफेड) कृषि मार्केटिंग सहकारी समितियों का एक शीर्ष निकाय है जिसे कृषि उत्पादों के व्यापार को पूरे देशभर में प्रोत्साहित करने के लिए वर्ष 1958 में गठित किया गया था। नाफेड हमेशा अपने सहकारी समितियों के नेटवर्क के माध्यम से अनाज, दाल, तिलहन, मसाले, कपास, आदिवासी उत्पाद, जूट उत्पाद, अंडे, ताजे फल और सब्जियां इत्यादि किसानों से खरीदता आया है जब भी उन्हें अपने उत्पादों को बेचने में किसी समस्या का सामना करना पड़ा है। मार्केटिंग सहकारी समितियों के कई फायदे होते हैं, जैसे – किसानों की मोल–तोल करने की क्षमता बढ़ जाती है; वे सीधे उपभोक्ताओं के साथ लेनदेन कर पाते हैं; उन्हें ऋण मिल जाता है; सस्ता परिवहन, भंडारण, ग्रेडिंग, और प्रसंस्करण सुविधाएं और बाजार आसूचना (market intelligence) इत्यादि। भारतीय किसान खाद सहकारी समिति (IFFCO) विश्व का सबसे बड़ी खाद सहकारी समिति है, जिसका गठन वर्ष 1967 में सहकारी समितियों के माध्यम से खाद का उत्पादन और वितरण के लिए हुआ था। इस वक्त करीब 40,000 से भी ज्यादा सहकारी समितियां इफको (IFFCO) की सदस्य हैं।

4. **सेवा (सर्विस) सहकारी समिति** : ऐसे कई सहकारी समितियां हैं जो अपने सदस्यों के लिए विभिन्न प्रकार की सेवाएं प्रदान करती हैं, जैसे – सहकारी ऋण समिति, सहकारी बैंक, या गृह निर्माण सहकारी समिति, इत्यादि। ऐसी समितियां कृषि उत्पादकों, कृषि मजदूरों और कारीगरों को कृषि ऋण प्रदान करने की महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। गांव के स्तर पर प्राथमिक कृषि सहकारी ऋण समिति (PACS) इस तरह की गतिविधियों का आधार है। यह आपस में मिलकर जिला के स्तर पर एक केंद्रीय सहकारी बैंक बनाते हैं जिसका शीर्ष निकाय राज्य स्तर पर होता है। कोऑपरेटिव बैंकों द्वारा दिए गए ऋण की मात्रा वर्ष 1950–51 में 55 करोड़ रुपये से बढ़कर वर्ष 2005–06 में 48,203

[12] *Kumar, V., K.G. Wankhede, and H.C. Gena. 2015. Role of Cooperatives in Improving Livelihood of Farmers on Sustainable Basis. American Journal of Educational Research, Vol. 3, 2015, Pages 1258-1266, 3(10), 1258–66.*

करोड़ पहुंच गया; और वर्ष 2010–11 में जिला कॉपरेटिव बैंक द्वारा दिए गए कर्ज की कुल संख्या 137,754 करोड़ थी।[13]

5. **संबद्ध सेवाएं (Applied Services) सहकारी समिति** : यह समितियां मुर्गी पालन, सूअर पालन, दुग्ध पालन, जैसी संबद्ध गतिविधियों से जुड़ी होती हैं। इनमें मुर्गीपालन मुख्य गतिविधि है जिसके देशभर में वर्ष 2008–09 में 4,233 सहकारी समितियां थीं, करीब 39,857 ठेका मजदूर और निर्माण सहकारी समितियां थीं और करीब 2,789 वन–मजदूर सहकारी समितियां थी।[14]

भारत में 1950 के दशक से लेकर अभी तक कृषि समितियों, कृषि किराएदार समितियां, संयुक्त कृषि समितियां, और सामूहिक कृषि समितियों की मदद से खेती या कृषि उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए कई प्रयास किए गए पर इनमें से अधिकतर कामयाब नहीं हुए। विशेष रूप से जब इनकी तुलना मूल्य–श्रृंखला के ऊपर के चरणों (जैसे प्रसंस्करण, खरीद और मार्केटिंग, सेवाएं और ऋण) में व्याप्त सहकारिता के साथ की जाए तो संयुक्त खेती में उच्च स्तर की सहकारिता की आवश्यकता होती है। इसके कामयाब उदाहरणों में ज्यादातर गरीब महिला किसान केंद्र में होती हैं, जिन्हें स्थानीय एनजीओ और सरकारी स्कीमों की मदद मिली हो।[15]

उत्पादन सहकारी समितियों को पंचवर्षीय योजना के शुरूआती वर्षों में बहुत तेजी से प्रोत्साहित किया गया था। पर जल्दी ही अनेक समस्याएं सामने आने लगीं। कई समितियां वर्ग या श्रेणी के मामले में समरूप नहीं थीं। इनमें छोटे–बड़े सभी किसान एक साथ आ सकते थे जिसका नतीजा यह हुआ की अभिजात वर्ग कमजोर सदस्यों के ऊपर अपना अधिपत्य जमाने की कोशिश करने लगा और वर्ग संघर्ष शुरू हो गए। इसके अलावा कई फर्जी सहकारी समितियां भी बनी जिनका मकसद सरकारी सब्सिडी का फायदा उठाना था। ऐसी समितियों में मजदूरों को काम के लिए नियुक्त किया जाता था और उन्हें फर्जी सदस्यता दी जाती थी। इन समितियों को बनाने वाले अक्सर बड़े भूमिधारी होते थे जो खुद काम का प्रबंधन करते थे। जो मुनाफा मिलता था उसे जमीन के आधार पर बांटते थे, न कि श्रम के योगदान के आधार पर। ऐसे माहौल में छोटे किसान और भूमिहीन लोगों की दिलचस्पी सहकारिता में खत्म हो गई।[16] अंततः भारत सरकार ने गरीब किसानों को केंद्र में रखकर सहकारी समितियों को प्रोत्साहित करने का काम शुरू किया। ऐसे प्रयास ऋण, प्रसंस्करण और मार्केटिंग समितियों के लिए तो कामयाब रहे पर संयुक्त खेती के मामले में उन्हें ज्यादा सफलता नहीं मिली।

4. भारत में सहकारी समितियों की सफलताएं

'भारत की राष्ट्रीय सहकारी समिति संघ' (National Cooperative Union of India) के अनुसार, वर्ष 2009–10 में भारत में करीब 1,47,991 प्राथमिक ऋण सहकारी समितियां (primary credit cooperatives) थीं जिनकी

---

[13] *Sinha, K.N., L.D. Ahuja, and R.C. Pandey. 2012. Indian Cooperative Movement: A Statistical Profile, 2012*

[14] *Sinha, K.N., L.D. Ahuja, and R.C. Pandey. 2012. Indian Cooperative Movement: A Statistical Profile, 2012*

[15] *Agarwal, B. 2010. Rethinking Agricultural Production Collectivities. Economic & Political Weekly, xlv (9), 64–78.*

[16] *Choudhary, K. 1979. Group farming in India, the Gambhira experience. In: Group farming in Asia : experiences and potentials. Singapore: Singapore university press. – Ebrahim, A. 2000. Agricultural cooperatives in Gujarat, India: Agents of equity or differentiation? Development in Practice, 10(2), 178–88.*

सदस्यता करीब 18.11 करोड़ थी। इसके साथ–साथ करीब 4,58,068 गैर–ऋण सहकारी समितियां थीं जिनकी सदस्यता करीब 6.82 करोड़ थी। आकार की दृश्टि से यह एक विशाल आंदोलन था और अपने आप में विश्व का सबसे बड़ा।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सहकारी समितियों का हिस्सा इस प्रकार है (वर्ष 2009–10 में, 'भारत की राष्ट्रीय सहकारी समिति संघ' की रिपोर्ट के अनुसार[17]) :

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सहकारी समितियों की हिस्सा	प्रतिशत हिस्सा
ग्रामीण नेटवर्क (सम्मिलित गांव) – मतलब : 98 प्रतिशत गांवों में सहकारी समितियां हैं	98
सहकारी समितियों द्वारा वितरित कुल कृषि ऋण – मतलब : भारत में वितरित कुल कृषि ऋण में 16.9 प्रतिशत हिस्सा सहकारी क्षेत्र का है	16.9
सहकारी समितियों द्वारा वितरित लघु अवधि (short term) कृषि ऋण – मतलब : भारत में वितरित कुल लघु अवधि कृषि ऋण का 20 प्रतिशत सहकारी क्षेत्र से आया है	20
किसान क्रेडिट कार्ड (31 मार्च 2012 को 436.6 लाख) – मतलब : 'किसान क्रेडिट कार्ड' योजना के तहत 38.3 प्रतिशत क्रेडिट कार्ड सहकारी बैंकों द्वारा जारी किए गए	38.3
खाद का वितरण – मतलब : भारत में 36 प्रतिशत खाद का वितरण सहकारी क्षेत्रों द्वारा किया गया	36
खाद का उत्पादन (वर्ष 2009–10 में 4.598 लाख मेट्रिक टन) – मतलब : भारत में कुल खाद उत्पादन का 28.3 प्रतिशत सहकारी समितियों द्वारा किया गया है; जैसे भारतीय किसान खाद सहकारी लिमिटेड	28.3
खाद निर्माण इकाइयों की क्षमता – नाइट्रोजन (31.69 लाख मेट्रिक टन, 31 मार्च 2010 को) – मतलब : नाइट्रोजन खाद की कुल निर्माण क्षमता का 26.3 प्रतिशत सहकारी क्षेत्र से है	26.3
खाद निर्माण इकाइयों की क्षमता – फॉस्फोरस (17.13 लाख मेट्रिक टन, 31 मार्च 2010 को) – मतलब : फॉस्फोरस खाद की कुल निर्माण क्षमता का 30.3 प्रतिशत सहकारी क्षेत्र से है	30.3
चीनी कारखानों की संख्या (324 कारखाने, 31 मार्च 2012 को) – मतलब : भारत में कुल चीनी कारखानों में से 48.2 प्रतिशत कारखानों का स्वामित्व सहकारी समितियों के पास है	48.2

[17] *Sinha, K.N., L.D. Ahuja, and R.C. Pandey. 2012. Indian Cooperative Movement: A Statistical Profile, 2012.*

चीनी उत्पादन (93.04 लाख टन, 31 मार्च 2012 को) – मतलब : कुल चीनी उत्पादन का 39.7 प्रतिशत सहकारी समितियां करती हैं	39.7
चीनी मिलों की क्षमता का उपयोग (31 मार्च 2012 को) – मतलब : देश में चीनी उत्पादन की कुल क्षमता में से 44.7 प्रतिशत का उपयोग सहकारी समितियों द्वारा किया जा रहा है	44.7
गेहूं की खरीद (वर्ष 2012–2013 के दौरान 94.40 लाख टन) – मतलब : किसानों से गेहूँ की कुल खरीद का 24.8 प्रतिशत खरीद सहकारी क्षेत्र करता है	24.8
धान की खरीद (वर्ष 2011–2012 के दौरान 55.18 लाख टन) – मतलब : किसानों से धान की कुल खरीद का 14.8 प्रतिशत खरीद सहकारी क्षेत्र करता है	14.8
उचित मूल्य की दुकानें (ग्रामीण और शहरी) – मतलब : सभी उचित मूल्य की दुकानों में से 20.3 प्रतिशत दुकानें (राशन की दुकानें जहां सब्सिडी वाले सस्ते अनाज बिकते हैं) सहकारी समितियों की हैं	20.3
कुल उत्पादन में दूध की खरीद – मतलब : दूध के कुल उत्पादन में से 7.85 प्रतिशत दूध की खरीद डेयरी सहकारी समितियों के द्वारा की जाती है	7.85
तेल की बिक्री (ब्रांडेड) – मतलब : भारत में 49 प्रतिशत तेल की व्यापार सहकारी क्षेत्र द्वारा किया जाता है	49
सहकारिता क्षेत्र में हथकरघा – मतलब : देश में कुल हथकरघा का 54 प्रतिशत सहकारिता क्षेत्र से है	54
सहकारिता क्षेत्र में मछुआरे (सक्रिय) – मतलब : 23 प्रतिशत मछुआरे सहकारी समितियों के सदस्य हैं	23
रबर खरीद और बिक्री – मतलब : रबर का 18.5 प्रतिशत की खरीद और व्यापार सहकारी समितियां करती है	18.5
सुपारी खरीद और बिक्री (3.65 लाख टन) – मतलब : सुपारी का 15 प्रतिशत खरीद और व्यापार सहकारी समितियां करती हैं	15

नमक उत्पादन (18,266 मेट्रिक टन) – मतलब : देश में कुल निर्मित नमक का 7.6 प्रतिशत सहकारी समितियों से आता है	7.6
रोजगार का सृजन	12.2 लाख
स्वरोजगार का सृजन – लोगों के लिए	165.8 लाख

सहकारी क्षेत्र ने करीब 5.45 लाख सहकारी संगठनों का एक विशाल नेटवर्क तैयार किया जिसमें 23.6 करोड़ से भी अधिक सदस्य हैं।

आजादी के बाद के शुरुवाती कुछ दशकों में हरित क्रांति के दौरान खाद्य सुरक्षा हासिल करने में सहकारी समितियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसने बीज, खाद और ऋण का एक नेटवर्क तैयार किया। इसकी सबसे बड़ी सफलता डेयरी क्षेत्र में रही जहां 'ऑपरेशन फ्लड' कार्यक्रम के माध्यम से भारत को, जहां दूध की कमी हुआ करती थी, अब विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश बना दिया। यह सब गरीब ग्रामीण किसानों पर केंद्रित एक बेहतरीन सहकारी मॉडल के गठन के माध्यम से हुआ।

'ऑपरेशन फ्लड' बहुत छोटे उत्पादकों (प्रतिदिन मात्र 1 लीटर दूध बेचने वाले उत्पादकों) को एक साथ जोड़ पाने में कामयाब रहा। तकनीक, उन्नत जाति, वृहद आधारिक संरचना की मदद से दूध का उत्पादन बढ़ाने के बजाए, इस कार्यक्रम में सारा ध्यान छोटे उत्पादकों को बाजार के साथ जोड़ने पर दिया गया। महिलाएं ऑपरेशन फ्लड का एक अहम हिस्सा थीं। इस कार्यक्रम के तहत करीब 6,000 महिला डेयरी सहकारी समितियों का गठन किया गया। हालांकि महिलाओं के बारे में मिश्रित प्रतिक्रिया देखने को मिली क्योंकि कुछ लोगों का मानना था कि इससे उनके काम के ऊपर अतिरिक्त बोझ बढ़ गया; और घर का दूध बेच देने के कारण परिवार के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा।[18]

'ऑपरेशन फ्लड' ने यह साबित कर दिया कि कृषि, विशेष रूप से पशुपालन, गरीबी उन्मूलन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। हालांकि, इसकी कुछ आलोचनाएं भी हो रही थीं। इनकी मदद से ग्रामीण भारत की आजीविका में सुधार आया। छोटे किसानों और पशुपालकों, विशेष रूप से महिलाओं की आमदनी बढ़ी। करीब 55,000 से भी ज्यादा डेयरी सहकारी समितियों का गठन किया गया। उत्पादकों और उपभोक्ताओं, दोनों को लाभ पहुंचाने के लिए उचित कीमत निर्धारण नीति बनाई गई। आपरेशन फ्लड के दौरान दूध का उत्पादन भी बढ़ा। बाद के वर्षों में करीब 93 लाख उत्पादक प्रतिदिन 10,900 मेट्रिक टन दूध का उत्पादन कर रहे थे।[19] इस मॉडल ने एक प्रभावी और कारगर स्थानीय खाद्य व्यवस्था का निर्माण किया।

---

[18] *Duncan, J. 2013. The White Revolution and reordering of relations among the pastoralists of Gujarat: a case for pastoralist policies. http://dx.doi.org/10.3362/2046-1887.2013.008.*

[19] *Duncan, J. 2013. The White Revolution and reordering of relations among the pastoralists of Gujarat: a case for pastoralist policies. http://dx.doi.org/10.3362/2046-1887.2013.008.*

यह तीन–स्तरीय मॉडल था – पहला, स्थानीय गांव संघ; दूसरा, जिला संघ; और तीसरा, राज्य स्तरीय संघ। इसमें स्थानीय खपत को प्राथमिकता दी गई। उसके बाद जो दूध बच जाता था उसे राज्य संघ को मार्केटिंग के लिए भेज दिया जाता था।

आज देशभर में डेयरी सहकारी समिति नेटवर्क में करीब 254 सहकारी दूध प्रसंस्करण इकाईयां और 177 दूध यूनियन हैं जो करीब 346 जिलों में फैले हुए हैं। देश भर में करीब 1,33,000 गांव स्तरीय समितियां हैं जिसमें करीब 140 लाख सदस्य किसान हैं।[20]

5 : भारत में पारंपरिक सहकारी समितियों के सामने चुनौतियां

जैसा कि पहले भी जिक्र किया जा चुका है कि सहकारी समितियों में ऊपर से नीचे के दृष्टिकोण के कारण कई बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। भारत का पूरा सहकारी क्षेत्र इन समस्याओं से जूझ रहा है। इनमें से मुख्य समस्याएं इस प्रकार हैं :[21]

1. **अत्यधिक नौकरशाही और नियंत्रण** : सहकारी समितियों का रजिस्ट्रार एक अत्यधिक नियंत्रण करने वाला पद है, जो सारे सहकारी समितियों को नियंत्रित करता है। नौकरशाही के कारण लागों की 'स्वायत्तता' बाधित होती है जिससे सहकारी क्षेत्र एक व्यापक जन आंदोलन का रूप नहीं ले पाता है।

2. **राजनीतिकरण** : प्रशासनिक सुधार कमिशन के अनुसार अधिकांश सहकारी समितियों के बोर्ड के ऊपर राजनीतिज्ञों का कब्जा है। इनमें से कई सहकारी समितियों में इसलिए हैं ताकि वे इस पद का अपना राजनीतिक आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए इस्तेमाल कर सकें। कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनके मौजूदा राजनीतिक स्थिति खराब है, और वे अपनी छवि बचाना चाहते हैं। ये गंभीर मुद्दे हैं और इनसे पूरी सहकारी व्यवस्था नष्ट होती जा रही है।[22] डेयरी के साथ–साथ गन्ना सहकारी समिति के क्षेत्र में यह बिलकुल स्पष्ट नजर आता है। वर्ष 2005 में 'फ्रंटलाइन' पत्रिका में छपे एक लेख में महाराष्ट्र के एक चीनी उद्योग अधिकारी ने कहा :

   ''ऐसी एक भी सहकारी समिति नहीं है जो राजनीतिक नियंत्रण से अछूती हो। जहां 5 प्रतिशत चीनी कारखाने भारतीय जनता पार्टी से जुड़ी यूनियन के नियंत्रण में है वहीं

---

[20] *Planning Commission. 2012. Report of the working group on animal husbandry and dairy. 12th five year plan (2012-2017). New Delhi.*

[21] *Administrative Reforms Commission. 2008. Social Capital – A Shared Destiny.*
Singh, S. and T. Singh. 2012. Producer companies in India: a study of organisation and performance. Draft report submitted to MoA, GoI. IEG, Delhi.
– Vaidyanathan, A. 2013. Future of Cooperatives in India. Economic and Political Weekly, xlviIi(18), 30–4.
– Malla, M. 2015. Workshop Report Producers Collectives and Livelihoods: Exploring Issues for Research and Policy.

[22] *Bureau. 2014. Politicisation of GCMMF threatens Amul | Business Line [online]. The Hindu BusinessLine. Available from: http://www.thehindubusinessline.com/economy/agri-business/politicisation-of-gcmmf-threatens-amul/article5549719.ece.*
– Aji, S. 2016. Neither farmers, nor consumers happy with loss-making Karnataka Cooperative Milk Producers Federation - The Economic Times [online]. Economic Times. Available from: http://economictimes.indiatimes.com/industry/cons-products/food/neither-farmers-nor-consumers-happy-with-loss-making-karnataka-cooperative-milk-producers-federation/articleshow/50606629.cms.

95 प्रतिशत कांग्रेस पार्टी के कब्जे में है, जिनमें से करीब 60 प्रतिशत के ऊपर नैश्नालिस्ट कांग्रेस पार्टी (एन.सी.पी.) का नियंत्रण है।''

3. **सरकारी वित्त पोशण और सब्सिडी पर निर्भरता** : 'स्वयं–सहायता' की भावना से प्रेरित हो पाने में सहकारी समितियां विफल रहीं, जो एक प्रधान और महत्वपूर्ण सिद्धांत है। ज्यादातर भारतीय सहकारी समितियां सरकारी वित्त पोशण (funding) या सब्सिडी के ऊपर निर्भर हैं। खराब नेतृत्व के कारण वे स्वायत्त और लाभप्रद नहीं बन पा रही है। सरकार भी विभिन्न वित्तीय नियंत्रण के माध्यम से इन समितियों के ऊपर अपना प्रभुत्व बनाए रखना चाहती है। समितियां अगर खुद से अपने लिए फंड इकट्ठा कर सकें तो आत्मनिर्भर बन सकती हैं।

4. **अभिजात वर्ग का कब्जा** : कई सहकारी समितियों के मामले में देखा गया है कि बड़े भूमिधारी या अभिजात वर्ग को ज्यादा फायदा हुआ है। उदाहरण के लिए, पश्चिम भारत के सफल चीनी सहकारी समितियां उत्पादन बढ़ाने में तो सफल रहीं पर वे वर्ग–अंतर को कम कर पाने में असफल रहे। धनी किसानों द्वारा मजदूर वर्ग का शोषण जारी था। अगर सदस्यों के बीच समानता हो, अर्थात् सारे सदस्य एक ही वर्ग से हों तो इस समस्या से निपटा जा सकता है। ऐसे में कोई भी किसी दूसरे की कीमत पर फायदा नहीं उठा सकेगा।[23]

5. **सदस्य केंद्रीयता के बदले बाजार उन्मुखीकरण** : सदस्यों के ऊपर केंद्रित होने के बजाए कई सहकारी समितियां, विशेष रूप से बहुत बड़ी समितियां, प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए बड़ी कंपनियों की तरह व्यवहार करने लगती हैं। उदारीकरण और भूमंडलीकरण से उपजे अत्यंत प्रतिस्पर्धात्मक बाजार के आने से यह समस्या और भी गंभीर हो गई है। सहकारी समितियों के ऊपर अपने काम को बाजार की दिशा में बदलने का काफी दबाव था। उदाहरण के लिए, डेयरी क्षेत्र में, अमूल (AMUL) या ओमफेड (OMFED) जैसी सहकारी समितियों के बीच कीमत कम करने की होड़ लग गई, जिससे उन्होंने खरीद अचानक रोक दी और खेत के स्तर पर खरीद की कीमतें तेजी से गिर गईं। छोटे किसानों के रोजगार नष्ट हो गए।[24]

6. **आधारिक संरचना का अभाव** : अधिकतर उत्पादक समूहों को भंडारण सुविधाओं का अभाव, बिजली की कमी, और कम प्रसंस्करण क्षमता, इत्यादि समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था।[25]

7. **प्रशिक्षित लोगों को ढूंढने और रखने में समस्याएं** : जमीनी स्तर के अनुभव यह बताते हैं कि सहकारी समितियों के पास प्रशिक्षण प्राप्त करने की संभावना बहुत कम थी।[26] सहकारी समितियां

---

[23] *Ebrahim, A. 2000. Agricultural cooperatives in Gujarat, India: Agents of equity or differentiation? Development in Practice, 10(2), 178–88.*

[24] *Ramdas, S.R. 2015. Death of Small-Farmer Dairies amidst India's Dairy Boom. Economic & Political Weekly EPW May, 9 (19). – Srikrupa, R., S. Ramdas, and R. Gopalan. 2016. Small Dairy Farmers Across India are Struggling for their Livelihoods [online]. The Wire. Available from: http://thewire.in/40436/small-dairy-farmers-across-india-are-struggling-for-their-livelihoods/ [Accessed 28 Jun 2016].*

[25] *Gaikar, V. 2015. An empirical study of co-operatives in India: with reference to the five year plans. The Business & Management Review, 5(4), 29–30.*

– Malla, M. 2015. Workshop Report Producers Collectives and Livelihoods: Exploring Issues for Research and Policy.

[26] *Malla, M. 2015. Workshop Report Producers Collectives and Livelihoods: Exploring Issues for Research and Policy.*

पेशेवर प्रशिक्षित लोगों को आकर्षित नहीं कर पा रही थीं। जो थोड़े बहुत थे भी उन्हें लम्बे समय तक रोक पाना मुश्किल हो रहा था।

8. **'मुफ्त सवारी'** : यह एक उत्कृष्ट समस्या है जिसने लोकहित के लिए किए गए सभी प्रयासों को प्रभावित किया है। सहकारी समितियों में सामूहिक खेती के अंदर कुछ सदस्य औरों की तुलना में कम काम कर रहे थे और 'मुफ्त' में बराबर मुनाफा प्राप्त कर रहे थे। ऐसा खासतौर से बड़ी समितियों में होता था जहां सभी एक दूसरे को या उनके काम के बारे में नहीं जानते थे।

इन समस्याओं के ऊपर अध्ययन करने के लिए कई आयोगों (कमेटियों) का गठन किया गया ताकि इन्हें सुधारा जा सके। चौधरी ब्रह्म प्रकाश आयोग (1990), मिर्धा आयोग (1996), जगदीश कपूर आयोग (2000), विखे पाटिल आयोग (2001) और बी. एस. व्यास आयोग (2001 और 2004) ने कई सुझाव दिए। अधिकतर सुझाव राज्य सहकारी समिति अधिनियम को बदल कर एक नया कानून बनाने के पक्ष में थे, जिससे सहकारी समितियों की स्वायत्तता सुनिश्चित की जा सके और उनमें एक नई जान डाली जा सके।

1. भारत के संविधान के अनुसार

भारत के संविधान में सहकारी समितियों का दो स्थानों पर जिक्र है[27]:

1. भाग 4, अनुच्छेद 43 : राज्य के नीति निर्देशक तत्व के रूप में, जो राज्य सरकारों को यह निर्देश देता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योग को, व्यक्तिगत या सहकारिता के आधार पर, प्रोत्साहित किया जाए; और
2. अनुसूची 7 में : संघ सूची की प्रविश्टि 43–44; और राज्य सूची की प्रविश्टि 32 में

सहकारी समूह गठन करने के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में माना गया है, जो अनुच्छेद 14 – 'समानता का अधिकार' और अनुच्छेद 19(1)(सी) – 'संघ या यूनियन बनाने का अधिकार' से निकलता है।

इस प्रकार सहकारी संगठन बनाने का अधिकार एक मौलिक अधिकार है। संविधान के अनुसार अगर राज्य किसी सहकारी समिति को वित्तीय सहायता देता है तो भी उसे उस पर नियंत्रण करने की अनुमति नहीं है।[28] सहकारी समितियों के नियंत्रण या नियमन से संबंधित कोई भी कानून संविधान और मौलिक अधिकारों की अवहेलना होगा। परंतु, जमीनी हकीकत कुछ और ही है। सहकारी समितियों के ऊपर सरकार का पूर्ण नियंत्रण है और इसी वजह से सहकारिता का विकास प्रभावित हुआ है।

क्योंकि सहकारी समितियों का गठन एक संवैधानिक अधिकार है इसलिए इनका पंजीकरण जरूरी नहीं है।[29] दरअसल, गांव के स्तर पर बने स्वयं–सहायता समूहों का पंजीकरण नहीं होता है। पंजीकरण या कानूनी ढांचे की जरूरत तभी पड़ती है जब सरकार से कोई सहायता प्राप्त करनी हो या आयकर विभाग से कोई छूट लेनी हो।

आइये देखते हैं कि भारत में ग्रामीण उत्पादन समूह के गठन से संबंधित मुख्य कानून कौन–कौन से हैं :

2. सहकारी समिति अधिनियम, 1912

'सहकारी ऋण समिति अधिनियम, 1904' का अनुसरण करते हुए, जो केवल ऋण तक सीमित था, सरकार ने सहकारी समिति अधिनियम (Co-operative Societies Act), 1912 बनाया। इसमें गैर–ऋण समिति और संघीय (federal) सहकारी संगठन के गठन का प्रावधान है। यह एक केंद्रीय अधिनियम था और इसके तर्ज पर अधिकतर राज्यों ने अपने खुद के सहकारी कानून बनाए, जिन्हें राज्य सहकारी समिति अधिनियम के नाम से जाना गया। जैसे 'अमूल डेयरी सहकारी समिति' को 'गुजरात सहकारी समिति अधिनियम, 1961' के

---

[27] *Administrative Reforms Commission. 2008. Social Capital – A Shared Destiny.*

[28] *Kapoor, S. 2015. Rural Collective Action Organizations in India: Sustainability and Social Impact | Shrey Kapoor - Academia.edu. University of St. Gallen.*

[29] *Kapoor, S. 2015. Rural Collective Action Organizations in India: Sustainability and Social Impact | Shrey Kapoor - Academia.edu. University of St. Gallen.*

अंतर्गत पंजीकृत किया गया और 'नंदनी दूध' के 'कर्नाटक दुग्ध संघ' को 'कर्नाटक सहकारी समिति अधिनियम, 1959' के तहत पंजीकृत किया गया।

इस अधिनियम के तहत सहकारी समितियों को कुछ सरकारी नियमों और सिद्धांतों का पालन करना होता है, जैसे – स्वैच्छिक सदस्यता, लोकतांत्रिक व्यवस्था, सीमित ब्याज, न्यायसंगत वितरण, सहकारी शिक्षा, और आपसी सहयोग।[30]

इस अधिनियम के तहत पंजीकरण की औपचारिक प्रक्रिया होती है। एक सहकारी संगठन बनाने के लिए अलग–अलग परिवारों के 10 वयस्कों को मिलकर आवेदन पत्र जमा करना होता है। इसमें एक निर्वाचित आम सभा (General Body) का गठन किया जाता है जिसके पास निर्णय लेने का अंतिम अधिकार होता है। समिति के निर्वाचन के साथ–साथ वार्षिक अंकेक्षण, आम बैठक, और लेखा–जोखा भी अनिवार्य होता है। सहकारी समिति के उपनियमों (Bye-laws) में किसी प्रकार का बदलाव लाने के लिए रजिस्ट्रार को सूचित करना होता है और उनसे पूर्व अनुमति लेनी होती है। रजिस्टार के पास सारे अधिकार होते हैं जिनकी मदद से वह किसी भी सरकारी समिति को जनहित में विभाजित या पुनर्गठित कर सकता है। इसके अलावा कृषि सहकारी समितियों में आधी सदस्यता अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित रखा जाता है।

इस अधिनियम में कई दिक्कतें सामने आईं, जैसे सरकारी अधिकारियों का हस्तक्षेप और नियंत्रण इत्यादि।

3. बहु–राज्य सहकारी समिति अधिनियम, 2002

इस अधिनियम को इसलिए बनाया गया जिससे सहकारी समितियां राज्यों के बाहर भी कार्य कर सकें।

वैसी सहकारी समितियां जिसके सदस्य किसी एक विशिष्ट राज्य से आते हैं, उन पर उस राज्य का अधिनियम लागू होता है। पर अगर कोई सहकारी समिति अपने सदस्यों के लिए कई राज्यों में काम करना चाहती है तो उन पर बहु–राज्य सहकारी समिति अधिनियम (Multi-State Co-operative Societies Act), 2002 लागू होता है। इस प्रकार ऐसे दो अधिनियम हैं – पहला, किसी राज्य का सहकारी समिति अधिनियम, जैसे – 'कर्नाटक राज्य सहकारी समिति अधिनियम', 'गुजरात राज्य सहकारी समिति अधिनियम', 'महाराष्ट्र राज्य सहकारी समिति अधिनियम' इत्यादि। दूसरा अधिनियम है – 'बहु–राज्य सहकारी समिति अधिनियम' जो उन सहकारी समितियों पर लागू होता है जो कई राज्यों में फैले होते हैं।

इस प्रकार की समितियों को 'बहु–राज्य सहकारी समिति' के रूप में उन सभी राज्यों में पंजीकरण करवाना होता है जहां वे सक्रिय होते हैं। हर बार नौकरशाही कि समस्या का सामना करना पड़ता है और कई सरकारी विभागों के साथ जूझना पड़ता है। यह अधिनियम मुख्य रूप से केवल बहुत बड़ी सहकारी समितियों के लिए ही उपयुक्त है जिनके पास विस्तार और प्रबंधन के पर्याप्त साधन हैं। इसीलिए ज्यादा बहु–राज्य सहकारी समितियों का पंजीकरण नहीं हुआ है।

---

[30] *Kapoor, S. 2015. Rural Collective Action Organizations in India: Sustainability and Social Impact | Shrey Kapoor - Academia.edu. University of St. Gallen.*

4. परस्पर–सहायता सहकारी समिति अधिनियम, 1995

सहकारिता पर बने कई आयोगों के सुझावों को ध्यान में रखते हुए 'परस्पर–सहायता सहकारी समिति अधिनियम [Mutually Aided Co-operative Societies (MACS) Act], 1995' बनाया गया है। इन्हें 'आत्मनिर्भर' सहकारी समिति भी कहा जाता है। इसकी शुरुआत आंध्र प्रदेश सरकार ने की थी। इसका मुख्य उद्देश्य सहकारी समितियों को सरकार के नियंत्रण से मुक्त करने का था। आंध्र प्रदेश का अनुसरण करते हुए 8 अन्य राज्यों ने भी इस अधिनियम को पारित किया। ये राज्य हैं – बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, जम्मू–कश्मीर, कर्नाटक, उड़ीसा और उत्तराखंड।[31]

इस तरह भारत में दो विशिष्ट प्रकार के सहकारी संस्थान मौजूद हैं। पहला, जिनका गठन सरकारी नीतियों और हस्तक्षेप द्वारा सीमित संसाधनों के वितरण के लिए किया गया हो। ऐसे उद्यम न तो प्रतिस्पर्धात्मक होते हैं और न ही व्यापार उन्मुख, क्योंकि इन्हें सरकार की तरफ से वित्तीय सहायता प्राप्त होती है, इनका स्वामित्व, प्रबंधन और नियंत्रण पूरी तरह से समिति के सदस्यों के हाथ में नहीं होता है। और दूसरा, सदस्यों द्वारा बनाई गई सहकारी समितियां, जो आत्मनिर्भर होती हैं। ऐसी सहकारी समितियों को स्वायत्त संगठनों के रूप में बनाया जाता है जिसमें लोग अपनी साझा जरूरतों को पूरा करने के लिए स्वेच्छा से एक संयुक्त–स्वामित्व वाले और लोकतांत्रिक रूप से नियंत्रित उद्यम का गठन करते हैं। परस्पर सहायता सहकारी समिति (MACS) इसी आत्मनिर्भर स्वायत्त सहकारी समितियों की श्रेणी में आता है।[32]

'परस्पर–सहायता सहकारी समिति (MACS) अधिनियम, 1995' की विशेषता यह है कि इसमें सरकारी पूंजी प्रतिबंधित है। अपनी पूंजी जुटाने के लिए सदस्यों को खुद प्रयास करना होता है। इन समितियों के प्रबंधन की जिम्मेदारी निदेशक मंडल (Board of Directors) के ऊपर होती है और इसकी नीतियां आम सभा (General Body) द्वारा तय की जाती हैं। सरकारी रजिस्ट्रार के पास भी सीमित अधिकार होते हैं, जैसे केवल सहकारी समितियों का पंजीकरण, उप–नियमों का पंजीकरण।

सहकारी सिद्धांतों के मामले में 'परस्पर सहायता सहकारी समिति (MACS) अधिनियम, 1995' ज्यादा लचीले होते हैं और इसलिए इनमें नए प्रकार के ढांचों को बनाने की संभावना होती है। अन्य सहकारी समितियों के मुकाबले परस्पर–सहायता सहकारी समितियों का ज्यादा तेजी से फैलाव नहीं हुआ है। इसके कई कारण हैं – पहला, पर्यवेक्षी संस्था (Supervising body) के अभाव में समितियों के बीच या उनके अंदर के कई विवाद अनसुलझे रह जाते हैं। सरकारी सुधार कार्यक्रम में यह अधिनियम शामिल नहीं था, जिससे इसके कुछ पहलू अविकसित या पुराने हो गए। सरकारी वित्त पोशण प्रतिबंधित होने के कारण कई संगठनों को पर्याप्त अनुदान इकट्ठा करने में दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा था। वे निजी या एनजीओ फंड पर निर्भर हो गए। पुराने सरकारी अधिनियम के तहत पंजीकृत सहकारी समितियों के पास अपने आप को MACS में बदलने का मौका था परंतु आर्थिक समस्याओं के कारण वे ऐसा नहीं कर सके। इस वजह से MACS का ज्यादा विकास नहीं हो पाया। कई सहकारी समितियां इतना संसाधन नहीं जुटा पाए जिससे वे अपने पुराने कर्ज चुकाकर नई व्यवस्था में शामिल हो सकें। इसलिए मजबूरन उन्हें सरकार नियंत्रित व्यवस्था के अंदर ही बने रहना पड़ा।[33]

---

[31] *Administrative Reforms Commission. 2008. Social Capital – A Shared Destiny.*

[32] *Administrative Reforms Commission. 2008. Social Capital – A Shared Destiny.*

[33] *Administrative Reforms Commission. 2008. Social Capital – A Shared Destiny.*

नए दौर की कंपनियां – किसान उत्पादक कंपनी

सरकार द्वारा चलाई गई सहकारी समितियों के अंदर कई समस्या होने के कारण एक नया कानून बनाने की मांग उठने लगी। ऐसा कानून जिसकी मदद से सहकारी समितियों की आर्थिक सफलता सुनिश्चित की जा सके, राजनीतिकरण और भ्रष्टाचार को खत्म किया जा सके, और सहकारिता के प्रमुख सिद्धांत बरकरार रह सकें। यह भी महसूस किया गया कि सहकारी समितियों को और ज्यादा छूट मिलनी चाहिए ताकि वे प्रतिस्पर्धात्मक बाजार में टिक सकें। इस प्रकार कल्याण–उन्मुख बनावट से व्यवसाय–उन्मुख ढांचे की तरफ एक बदलाव देखा गया।[34] कुछ लोगों का मानना था कि सहकारी समितियों की आर्थिक अक्षमता के कारण सरकार को हस्तक्षेप करने का मौका मिल जाता है। इससे राजनीतिक हस्तक्षेप और भ्रष्टाचार का जोखिम बढ़ जाता है और स्वायत्तता और लोकतांत्रिक नियंत्रण जैसे मुख्य सिद्धांतों धरे रह जाते हैं।

दूसरी तरफ 'परस्पर–सहायता सहकारी समितियों' (MACS) का विस्तार देश में बहुत धीरे–धीरे हो रहा था, जिससे कुछ विशेषज्ञ एक व्यापार–उन्मुख कानूनी ढांचा की मांग करने लगे जिनका आसानी से गठन किया जा सके। अंततः, कंपनी एक्ट, 1956 में संशोधन करके वर्ष 2003 में 'किसान उत्पादक कंपनी' (Farmer Producer Company – FPC) के रूप में एक नया अध्याय जोड़ा गया। इस कानून में किसान उत्पादक कंपनी के लिए भी वही नियामक ढांचा है जो अन्य कंपनियों का है। यह सहकारी समितियों से बिलकुल भिन्न है।

'किसान उत्पादक कंपनी' (FPC) को 'किसान उत्पादक संगठन' (Food Producer Organisation – FPO) या 'उत्पादक कंपनी' (Producer Company – PC) के नाम से भी जाना जाता है। यह निजी कंपनी और सहकारी समिति का एक सम्मिश्रण है। इसे दोनों संस्थानों की अच्छाईयां शामिल हैं इसलिए इन्हें नए दौर की सहकारी समितियां भी कहा जाता है। इनका उद्देश्य किसानों के समूह को भूमंडलीकृत बाजार के अंदर प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करना है और इन्हें आधुनिक सप्लाई नेटवर्क के साथ जोड़ना है जिससे लेन–देन और संयोजन का खर्च कम हो जाए और आकार बड़ा होने का फायदा उठाया जा सके। ऊंचे से नीचे के दृष्टिकोण वाले छोटे किसानों के बाजार एकीकरण मॉडल (जैसे ठेका खेती) से अलग इस प्रकार की उत्पादक कंपनियां सामुदायिक स्तर पर उद्यमशीलता की भावना जागृत करने की भूमिका निभाते हैं।

पारंपरिक सहकारी समिति से भिन्न, नए दौर की कंपनी में केवल वास्तविक उत्पादक ही हिस्सेदार (shareholder) बन सकते हैं, कोई बाहरी व्यक्ति नहीं। इससे इन कंपनियों की स्वायत्तता बनी रहती है और बाहर के राजनेता या सरकारी अधिकारी इस पर नियंत्रण नहीं कर पाते। इन कंपनियों में सारा नियंत्रण उत्पादक सदस्यों के हाथ में ही रहता है। सांस्थानिक सदस्य भी एक किसान उत्पादक कंपनी का गठन कर सकते हैं, जैसे कई स्वयं–सहायता समूह आपस में मिलकर एक किसान उत्पादक कंपनी का गठन कर सकते हैं।

उत्पादक कंपनी के कई उद्देश्य हो सकते हैं, जैसे – उत्पादन, कटाई, खरीद, श्रेणीकरण (grading), जमा करना (pooling), संभालना (handling), मार्केटिंग, प्राथमिक उत्पादों का निर्यात, और माल और सेवाओं का

[34] *Singh, S. and T. Singh. 2012. Producer companies in India: a study of organisation and performance. Draft report submitted to MoA, GoI. IEG, Delhi.*

अपने फायदे के लिए आयात, इत्यादि। 10 या उससे अधिक व्यक्तिगत उत्पादक इसके सदस्य बन सकते हैं या 2 या उससे अधिक उत्पादक संस्थान या दोनों मिलकर। इन्हें प्राइवेट लिमिटेड कंपनी माना जाता है। इनकी सदस्यता खुली और स्वैच्छिक होती है और इसकी कोई सीमा नहीं होती है। इसमें 'एक सदस्य–एक वोट' का सिद्धांत होता है, बिना इस बात की परवाह किए कि उसका कंपनी के अंदर कितना हिस्सा है।

किसान सदस्य शेयर खरीद कर शुरुआती पूंजी जमा करते हैं। यह शेयर लागत निशिद्ध नहीं है और इसकी कीमत 50 रुपये से लेकर 200 रुपये के बीच हो सकती है।[35] इन शेयरों का सार्वजनिक रूप से खरीदना–बेचना प्रतिबंधित है। इन्हें केवल दूसरे सदस्यों को ही दिया जा सकता है। अगर कोई सदस्य कंपनी छोड़ना चाहता हो तो वह अपने शेयरों को किसी दूसरे सदस्य को ही बेच सकता है, किसी बाहरी को नहीं। इससे यह सुनिश्चित हो जाता है कि अन्य कंपनी या बहुराष्ट्रीय कंपनी इन पर कब्जा न कर सकें। इससे किसानों के पास कभी भी जुड़ने या बाहर निकलने की सुविधा रहती है। यह एक ग्रामीण समूह की कामयाबी के लिए काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे स्वेच्छाधीनता (voluntariness) बनी रहती है।

किसान उत्पादक कंपनी कानून के तहत यह आवश्यक होता है कि प्रबंधन के लिए एक पेशेवर प्रबंधक या सीईओ (CEO) या किसी भी अन्य कर्मचारी को नियुक्त किया जाए। छोटे किसानों में प्रबंधन क्षमता के अभाव के कारण उनका कृषि खाद्य नेटवर्क के साथ ठीक तरह से एकीकरण नहीं हो पाता था। एक पेशेवर प्रबंधक की नियुक्ति से इसका समाधान निकल सकता है। हालांकि हकीकत में अक्सर किसान उत्पादक कंपनियों को एक योग्य और पेशेवर प्रबंधक ढूंढने के लिए हमेशा संघर्ष करना पड़ता है। यह समस्या अन्य ग्रामीण समूहों के साथ भी रही है, जिसमें MACS भी शामिल है।

तालिका 2 : भारत में सहकारी समितियां और किसान उत्पादक कंपनी के बीच अंतर

	सहकारी समिति	**किसान उत्पादक कंपनी**
पंजीकरण	सहकारी समिति अधिनियम	कंपनी अधिनियम
सदस्यता	किसी भी व्यक्ति या सहकारी समिति के लिए खुला	केवल उत्पादक सदस्यों और उनकी संस्थओं के लिए
बोर्ड में पेशेवर लोग	नहीं	लिया जा सकता है
संचालन का क्षेत्र	वर्जित	पूरे देश में
अन्य संस्थाओं के साथ संबंध	केवल लेन–देन पर आधारित	संयुक्त उद्यम और गठबंधन बना सकते हैं
शेयर	खरीदा या बेचा नहीं जा सकता	सदस्यतों के बीच खरीद–बेच सकते हैं

[35] *Trebbin, A. and M. Hassler. 2012. Farmers' Producer Companies in India: A New Concept for Collective Action? Environment and Planning A, 44(2), 411–27.*

सदस्यों का हिस्सा	शेयर के साथ कोई संबंध नहीं	शेयर और वितरण अधिकार के साथ जोड़ना संभव
मताधिकार	एक व्यक्ति–एक वोट; लेकिन सरकार और रजिस्ट्रार के पास वीटो के अधिकार (निशेधाधिकार)	एक सदस्य–एक वोट; गैर–उत्पादक सदस्यों के पास कोई वोट नहीं
रिज़र्व	अगर लाभ हो तभी	अनिवार्य
मुनाफे का बंटवारा	पूंजी के ऊपर सीमित लाभांश	सरपरस्ती पर आधारित; पर लाभांश पर सीमा
सरकार की भूमिका	महत्वपूर्ण	न्यूनतम
प्रकटीकरण (disclosure) और अंकेक्षण की जरूरतें	नियामक संस्था को वर्षिक रिर्पोट	कंपनी अधिनियम के अनुसार सख्त नियम
प्रशासनिक नियंत्रण	अत्यधिक	कोई नहीं
बाहरी इक्विटी	कोई प्रावधान नहीं	कोई प्रावधान नहीं
उधार लेने की क्षमता	वर्जित	कई विकल्प
विवाद निपटान	सहकारिता की पद्धति से	मध्यस्थता के जरिए

स्त्रोत : *Trebbin, A. and M. Hassler. 2012. Farmers' Producer Companies in India: A New Concept for Collective Action? Environment and Planning A, 44(2), 411–27.*

राज्य सरकारें किसान उत्पादक कंपनी के गठन के लिए शुरुआती आर्थिक प्रोत्साहन देती आई हैं, जिसमें सहकारी समितियों को अपने आप को किसान उत्पादक कंपनी में बदलने का मौका भी शामिल है। इसके बावजूद भी ज्यादा फर्क नहीं पड़ा। एक अध्ययन[36] के अनुसार, वर्ष 2011 तक भारत में 170 किसान उत्पादक कंपनियां पंजीकृत थी, जिनमें से अधिकतर प्राइवेट कंपनियों, राज्य सरकार, अंतरराष्ट्रीय संगठन या स्थानीय एनजीओ के साथ सहयोग में थीं।

किसान उत्पादक कंपनी केवल भारत में ही नहीं है, ऐसी नए दौर की सहकारी समितियां एक लंबे समय से विश्व के अलग–अलग जगहों पर, विशेष रूप से अमेरिका और कनाडा में, विकसित होती रही हैं। इनके विकास के पीछे का उद्देश्य प्रतिस्पर्धा में बने रहने और एक दूसरे के साथ सहज समन्वय स्थापित करने के लिए सहकारी समितियों का क्षमता वर्धन करना था।[37]

[36] *Singh, S. and T. Singh. 2012. Producer companies in India: a study of organisation and performance. Draft report submitted to MoA, GoI. IEG, Delhi.*

[37] *Singh, S. and T. Singh. 2012. Producer companies in India: a study of organisation and performance. Draft report submitted to MoA, GoI. IEG, Delhi.*

तालिका 3 : उत्पादक कंपनियों और छोटे किसानों के बीच तुलना

सहायता के क्षेत्र	छोटे किसान	उत्पादक कंपनी
मार्केटिंग	कम मात्रा, मोल–तोल की सीमित क्षमता	एकत्रीकरण और मार्केटिंग
बाजार की जानकारी	सीमित उपलब्धता, पर मोबाइल फोन के आने से बढ़ रही है	संभावित खरीददार और उत्पादक कंपनी के बीच सीधा संपर्क
परिवहन / ढुलाई	अक्सर समय लगने वाला; और / या महंगा	सुव्यवस्थित
कोल्ड स्टोरेज	कोई सुविधा नहीं	साझा संरचना के रूप में ठण्डे कक्षों का निर्माण
सिंचाई	सिंचाई सुविधा नहीं, कुंए के मालिक या पानी सपलायर पर निर्भरता	सामुदायिक कुंए बनाना; टंकियों का निर्माण; और पाइप बिछाना
एक्सटेंशन सेवा और तकनीक	उपलब्ध नहीं / एकतरफा जानकारी	किसानों से किसानों को शिक्षा और प्रशिक्षण; खेती के पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण
इंपुट सप्लाई	बाजार से खरीदना पड़ता है; ऋण की समस्या	मार्केट से कम दाम पर, कंपनी द्वारा दिया जाता है; जैविक खाद और कीटनाशकों का खुद उत्पादन; बैंक के साथ जुड़ाव
उत्पादन योजना	कम समय के लिए	बाजार की गतिविधियों के बारे में लगातार जानकारी मिलते रहने से ज्यादा व्यवस्थित योजना बनाना संभव
अतिरिक्त उत्पादन	मजबूरन बिक्री या नश्ट होने का जोखिम	मूल्य संवर्धन या आगे का प्रसंस्करण
ब्रांडिंग	कोई नहीं	कंपनी या खरीददार द्वारा ब्रांड तैयार करना

स्त्रोत : *Trebbin, A. and M. Hassler. 2012. Farmers' Producer Companies in India: A New Concept for Collective Action? Environment and Planning A, 44(2), 411–27.*

एक उत्पादक कंपनी के गठन के बारे में जानने के लिए यहां क्लिक करें http://sfacindia.com/Docs/Resources%20Handbook%20for%20establishing%20a%20PC.pdf

स्वयं–सहायता समूह (SHG) और अति–लघु उद्योग (Micro Enterprises)

सहकारिता और सामूहिकता का एक मौलिक सिद्धांत 'स्वयं–सहायता' है। पारंपरिक सहकारी समितियों और किसान उत्पादक कंपनियों से भिन्न 'स्वयं–सहायता समूह' (SHG) ज्यादा अनौपचारिक, छोटे, और गांव स्तरीय संगठन या उप–समूह होते हैं। यह सदस्यता आधारित समूह होते हैं, जिनके सदस्य संयुक्त रूप से निर्धारित लक्ष्य हासिल करने के लिए आपस में एक दूसरे को सहयोग करते हैं। इनका मुख्य मकसद बचत और मितव्ययता (thrift) होता है और अंततः अति–लघु उद्योग (Micro Enterprise) स्थापित करने का होता है। इनमें अक्सर 20 से कम सदस्य होते हैं, क्योंकि इससे ज्यादा संख्या होने पर पंजीकरण अनिवार्य हो जाता है। अनौपचारिक और छोटा होने के कारण यह नौकरशाही, भ्रष्टाचार, और गैर–जरूरी प्रशासनिक खर्चों से बचे रहते हैं। ऐसे समूह आमतौर पर सामाजिक वर्ग और जाति के नजरिए से समरूप होते हैं, जिससे सदस्य बिना किसी भेदभाव के कार्य कर सकें। स्वयं–सहायता समूह किसी सहकारी समिति या किसान उत्पादक कंपनी या किसी बड़े औपचारिक सांगठनिक ढांचे का सदस्य बन सकते हैं।

भारत में ग्रामीण ऋण, लघु वित्त (माइक्रो फाइनेंस) और बीमा क्षेत्र में स्वयं–सहायता समूह काफी लोकप्रिय हुए हैं। इसमें कोई शक नहीं कि अपने अनौपचारिक स्वभाव के कारण, यह गांव के स्तर पर सबसे लोकप्रिय सामूहिक संगठन है, विशेष रूप से महिलाओं के बीच। माइक्रो–क्रेडिट और स्वयं–सहायता समूह में अंतर होता है। माइक्रो–क्रेडिट में महिलाओं को सिर्फ ऋण देने का प्रावधान होता है जबकि स्वयं–सहायता समूह में बचत के अलावा सामाजिक सरोकारों पर भी ध्यान दिया जाता है।[38]

स्वयं–सहायता समूह कई प्रकार की गतिविधियों में शामिल होते हैं, जैसे समूह में बचत, गैर–कृषि कार्य, और औपचारिक वित्तीय सेवा, इत्यादि। स्वयं–सहायता समूह द्वारा लिए जाने वाले कुछ कार्य इस प्रकार हैं :

1. लगातार थोड़े–थोड़े पैसे बचाना; प्रत्येक सदस्य प्रति दिन 5 से 10 रुपये के बीच एक निर्दिष्ट राशि जमा करता है।
2. आपसी सहमति से एक साझा फंड के लिए योगदान किया जाता है, जिसकी मदद से समूह के सदस्यों को निजी कार्य या व्यापार के लिए छोटा–मोटा ऋण दिया जा सके।
3. आपातकालीन जरूरतों को पूरा करने के लिए कर्ज उपलब्ध कराना। उदाहरण के रूप में अगर परिवार में कोई बीमार हो जाए तो वह स्वयं–सहायता समूह के पास जा सकते हैं और अस्पताल के खर्च के लिए तुरंत कर्ज प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार से तुरंत लोन की व्यवस्था किसी औपचारिक बैंक प्रणाली में संभव नहीं है।
4. सामूहिक नेतृत्व तथा आपसी निर्णय की मदद से विवादों को निपटाना।
5. समूह द्वारा तय किए गए शर्तों पर बिना कुछ गिरवी रखवाए ऋण प्रदान करना।

[38] *Agarwal, B. 2010. Rethinking Agricultural Production Collectivities. Economic & Political Weekly, xlv(9), 64–78.*

6. सामूहिक अति–लघु उद्योग (Micro Enterprise), जैसे खाद्य–प्रसंस्करण, खेती, हस्तशिल्प, श्रृंगार प्रसाधन का उत्पादन, चारा उत्पादन, जल विभाजन प्रबंधन (water shed management) इत्यादि के लिए ऋण प्राप्त करने के उद्देश्य से औपचारिक बैंकों में खाता खोलना।

ऋण और उत्पादन गतिविधियों की चर्चा करने के लिए स्वयं–सहायता समूह की मासिक बैठक होती है। अक्सर समूह के सदस्य अन्य महत्वपूर्ण सामाजिक कार्यक्रमों में भी भाग लेते हैं। यह महिलाओं को एक मंच प्रदान करता है जहां वे सामूहिक रूप से विभिन्न समस्याओं, जैसे – महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, नशाखोरी, दहेज प्रथा, अपर्याप्त आधारिक संरचना, बच्चों की देखभाल, स्वास्थ्य, इत्यादि – के ऊपर चर्चा करती हैं और हल निकालने की कोशिश करती हैं।

अधिकांश, स्वयं–सहायता समूह अनौपचारिक और गैर–पंजीकृत होते हैं। पर माइक्रो क्रेडिट जैसी वित्तीय सेवाओं के लिए पंजीकरण आवश्यक है। भारत में करीब 80 प्रतिशत स्वयं–सहायता समूह महिलाओं के हैं।[39] अधिकतर मामले में इन्हें बाहर से प्रोत्साहन मिलता रहता है, जैसे – एनजीओ, प्राइवेट निकाय या सरकार द्वारा।

स्वयं–सहायता समूह की शुरुआत बांग्लादेश के मोहम्मद यूनुस द्वारा वर्ष 1975 में की गई थी। भारत में इसकी शुरुवात 1980 के दशक में 'मैसूर पुनर्वास और क्षेत्र विकास एजेंसी' (MYRADA)[40] द्वारा की गई। उसके बाद 'कृषि और ग्रामीण विकास के लिए राष्ट्रीय बैंक' (NABARD) और अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठन जैसे 'कृषि विकास के लिए अंतरराष्ट्रीय फंड' (IFAD) ने इसे आगे बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए।

एक सहायता समूह गठित करने के लिए निम्नलिखित कदम आवश्यक होते हैं :

1. मिलें और मुद्दा तय करें – यह मुद्दा ऋण से जुड़ा हो सकता है, जैसे बचत या ऋण प्राप्त करना। यह ऋण के अलावा भी हो सकता है, जैसे मूल्य–संवर्धन, संयुक्त उत्पादन, उत्पादन सामग्री की उपलब्धता, पारिस्थितिकी–कृषि अपनाना, बीज बचत, शिक्षा, इत्यादि।

2. उप–नियम (bye-laws) तय करें, जिम्मेदारियों को आपस में बांटें, और कार्यप्रणाली, नेतृत्व, प्रवेश शुल्क, ऋण का ब्याज, इत्यादि से जुड़े निर्णय लें। आप किसी एनजीओ, राज्य, या किसी जानकार व्यक्ति से मदद ले सकते हैं। जैसे, नाबार्ड (NABARD) स्वयं–सहायता समूहों को प्रशिक्षण और परामर्श सेवाएं देता है। कई निजी एनजीओ भी ऐसा करते हैं।

3. प्रोजेक्ट के लिए पैसों की व्यवस्था करना – इन पैसों को समूह के अंदर से भी इकट्ठा किया जा सकता है और थोड़ा बहुत बैंक से कर्ज के रूप में, सरकारी अनुदान और अन्य स्त्रोतों से प्राप्त किया जा सकता है। नाबार्ड (NABARD) स्वयं–सहायता समूहों को बीज के लिए फंड देता है, इसके लिए नाबार्ड के दफ्तर में जाकर पता किया जा सकता है। स्वयं–सहायता समूह बैंक में अपना खाता खोल सकते हैं और वहां से भी ऋण प्राप्त कर सकते हैं।

---

[39] *Kapoor, S. 2015. Rural Collective Action Organizations in India: Sustainability and Social Impact | Shrey Kapoor - Academia.edu. University of St. Gallen*

[40] *Parthasarathy, A. 2015. A Study On Origin And Growth Of Self Help Groups In India, 14, 250–4.*

4. लेखा–जोखा, प्रगति और काम के बारे में बातचीत करने के लिए समय–समय पर मिलते रहें।

स्वयं–सहायता समूह महिला सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण माध्यम रहा है। हालांकि, ऋण के क्षेत्र में इनकी सफलता विवादास्पद रही है। बड़े माईक्रो–क्रेडिट कार्यक्रमों द्वारा शोषण की कई कहानियां सामने आई हैं, विशेष रूप से अत्यधिक ब्याज दर से जुड़ी। परंतु इन सबके बावजूद भी ग्रामीण गरीब समुदाय, विशेष रूप से महिलाओं के आत्मविश्वास को बढ़ाने में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। यह आपसी भरोसा और एकजुटता को बढ़ावा देते हैं और महिलाओं को अपनी आमदनी, सामूहिक शिक्षा, आत्मविश्वास और आर्थिक आत्मनिर्भरता बढ़ाने का जरिया प्रदान करते हैं।

केस स्टडी

1. धारानी सहकारी समिति (परस्पर–सहायता सहकारी समिति का उदाहरण)[41]

'धारानी कृषि और मार्केटिंग परस्पर–सहायता सहकारी समिति लिमिटेड', तेलंगाना में 'टिमबकटू कलेक्टिव' का हिस्सा है। यह एक बड़ा कलेक्टिव है जिसमें सहकारी समिति, महिलाओं द्वारा संचालित बैंक, शिक्षा कार्यक्रम, बुनकर समूह, जैविक खेती उत्पादक, इत्यादि जैसे प्रोजेक्ट शामिल हैं। हम यहां केवल धारानी के बारे में बातचीत करेंगे जो एक उत्पादक समूह है और परस्पर–सहायता सहकारी समिति का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह किसानों के लिए खरीद, प्रसंस्करण, और मार्केटिंग के अवसर प्रदान करता है जो अब जैविक पद्धति से खेती करने लगे हैं। ये किसान अपने उत्पादों को भागीदारी गारंटी योजना के माध्यम से प्रमाणित करते हैं। धारानी इन किसानों को बाजार की गारंटी देता है।

धारानी सहकारी समिति के सदस्य अपने प्रसंस्करण केन्द्र पर
Photo credits: Stephanie Wang

धारानी का पंजीकरण वर्ष 2008 में 'आंध्र प्रदेश परस्पर–सहायता सहकारी समिति अधिनियम 1995' के तहत किया गया था। धारानी के लिए शुरुआती पूंजी टिमबकटू कलेक्टिव के शुभचिंतकों द्वारा कम ब्याज वाले सामाजिक निवेश ऋण के रूप में इकट्ठा किया गया था। थोड़ी पूंजी सदस्यता शुल्क से भी जमा हुई। 'परस्पर–सहायता सहकारी समिति' (Mutually Aided Cooperative Society – MACS) को 'स्वायत्त सहकारी समिति' के नाम से भी जाना जाता है। इसके लिए पूंजी को खुद ही इकट्ठा करना होता है और सरकार इसमें आमतौर पर कोई भी आर्थिक योगदान नहीं देती है। सहकारी समितियों को स्वायत्तता प्रदान करने के लिए और उन्हें सरकारी नियंत्रण से दूर रखने के लिए यह आवश्यक है।

धारानी के सदस्य सामान्य किसान हैं जिनका हिस्सा पूंजी में 1,000 रुपये प्रति सदस्य है। प्रत्येक 5 किसानों को मिलाकर एक इकाई बनती है जिसे 'ब्रुंदम' कहते हैं। तीन 'ब्रुंदम' अर्थात कुल 15 किसानों को मिलाकर एक 'संगम' बनता है। हर गांव में 'संगम' का एक दफ्तर होता है और कुछ लोग लेखा–जोखा और दफ्तर प्रबंधन इत्यादि के लिए जिम्मेदार होते हैं। प्रत्येक तीन गांवों को मिलाकर एक 'निर्वाचन क्षेत्र' (constituency) होता है। सदस्यों द्वारा प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में एक 'निदेशक' चुना जाता है। धारानी के बोर्ड में 12 ऐसे

[41] *यह भाग आशीष कोठारी के लेख के एक अंश का सारांश है; Kothari, A. 2014. Very Much on the Map: the Timbaktu Collective.*

धारानी सहकारी समिति के केन्द्र पर मूंगफली के दाने निकालने वाली मशीन
Photo credits: Stephanie Wang

निदेशक हैं। बोर्ड में इनके अलावा तीन नामित सदस्य भी होते हैं (धारानी का सीईओ, टिमबकटू कलेक्टिव का अध्यक्ष, और 'आदिशक्ति' के बोर्ड का एक सदस्य)। धारानी के बोर्ड की बैठक महीने में एक बार होती है। साल में एक बार आम सभा (जनरल बॉडी) की बैठक होती है।

धारानी में करीब 1,800 किसान सदस्य हैं जिनके पास कुल जमा पूंजी करीब 21 लाख रुपये है। बड़े भंडारण और प्रसंस्करण सुविधाओं के अभाव में केवल 200 किसानों के ही उत्पादों को खरीद पाना संभव होता है। धारानी जैविक किसानों को उनके उत्पाद जैसे बाजरा, ज्वार, रागी, कोदो और सामा के लिए अच्छी कीमत की गारंटी देता है। यह कीमतें बाजार की कीमतों से औसतन 25 से 33 प्रतिशत ज्यादा होती हैं। बाजार की कीमतों पर मूंगफली और धान को भी खरीदा जाता है।

धारानी मोटे अनाज की खरीद पर ज्यादा जोर डालता हैं क्योंकि यह बहुत फायदेमंद है। धारानी के मार्केटिंग सहयोग के कारण कई किसानों ने इस इलाके में मोटे अनाज को लगाना शुरू कर दिया है। यहां तक कि पहले मूंगफली और मोटे अनाज का अनुपात 80–20 हुआ करता था, वह अब बदलकर 40–60 हो गया है। पहले मूंगफली की फसल से यह इलाका भरा रहता था जिसे काफी संसाधनों की आवश्यकता पड़ती थी। अब मोटे अनाजों ने इसकी जगह ले ली है।

मोटे अनाज लगाने का एक दूसरा प्रलोभन है – बोनस। ज्यादा उत्पादन या मुनाफा होने पर इसे आमतौर पर सभी किसानों में बोनस के रूप में बांट दिया जाता है। यह बोनस मोटे अनाज के लिए 5 रुपये प्रति किलो है और मूंगफली के लिए मात्र 1 रुपये प्रति किलो होता है। धारानी दाल जैसी दूसरी फसलों की भी खरीद करती है। इन सभी का प्रसंस्करण और मार्केटिंग 'टिमबकटू जैविक' के नाम से किया जाता है।

धारानी खुदरा बिक्री का 20 प्रतिशत सांगठनिक खर्चों के लिए रख लेता है। 65 प्रतिशत हिस्सा किसानों को जाता है और 15 प्रतिशत तक सीधे खर्च हो जाते हैं (पैकेजिंग, ट्रांसपोर्ट, और ग्रेडिंग

टिमबकटू जैविक द्वारा बेचे जा रहे धारानी सहकारी के उत्पाद
Source: http://bit.ly/2f3GRtC

इत्यादि में)। धारानी के पास भंडारण की व्यवस्था भी है जहां खरीद के बाद उत्पाद को रखा जाता है। हालांकि अभी भंडारण और प्रसंस्करण सुविधाओं का अभाव है पर इसके विस्तार के बारे में सोचा जा रहा है। करीब 100 विक्रेता सहकारी समिति से जुड़े हुए हैं और वे सीधे यहां आकर अपना माल खरीदते हैं।

धारानी की आर्थिक स्थिति लगातार बेहतर हो रही है। इसने वर्ष 2010–11 में, अर्थात शुरुआत के 3 वर्षों में ही लाभ अर्जन की स्थिति प्राप्त कर ली थी। वर्ष 2011–12 तक इसने 56 लाख रुपयों की बिक्री की थी और वर्ष 2012–13 में यह 98 लाख रूपये तक पहुंच गया था। इस समय तक इसने अपने सदस्यों को बोनस बांटना शुरू कर दिया था। धारानी के मुख्य कार्यकारी अधिकारी (CEO) को आंशिक वेतन धारानी से मिलता है और बाकी टिमबकटू कलेक्टिव से; जबकि सभी अन्य कर्मचारियों को सिर्फ धारानी से वेतन प्राप्त होता है।

धारानी सहकारी समिति का प्रसंस्करण केन्द्र
Photo credits : Stephanie Wang

आमदनी बढ़ाने के लिए धारानी को अपने उत्पादों में विविधता लानी पड़ी और ज्यादा आकर्षक उत्पादों को लेकर आना पड़ा, जैसे मिश्रण के लिए तैयार डोसा का आटा, स्नैक्स, मिलेट माल्ट, इत्यादि। यह अपने उत्पादों को ऑनलाइन (इंटरनेट के माध्यम से) भी बेच रहा है और बेंगलुरू जैसे नए शहरों में अपनी बिक्री के कार्यों का विस्तार कर रहा है।

जहां टिमबकटू कलेक्टिव का ध्यान मार्केटिंग और व्यापार के ऊपर था, वही समूह के लिए यह महत्वपूर्ण था कि सदस्य परिवार भी इन जैविक अनाजों का सेवन करना शुरू करें।

हालांकि, धारानी की सदस्यता लगातार बढ़ रही थी पर जैविक खेती को अपनाने वाले किसानों की संख्या अभी भी कम थी। केवल कुछ ही गांव में जैविक किसानों की संख्या ज्यादा थी। विशेषज्ञों और प्रशिक्षकों के अभाव में नए किसानों को जैविक पद्धति के साथ जोड़ना मुश्किल हो रहा था।

2. 'कुडुम्बश्री' – केरल में महिलाओं की संयुक्त खेती कार्यक्रम

'कुडुम्बश्री' का अर्थ परिवार की समृद्धि है। यह एक राज्य गरीबी निवारण मिशन है जिसकी शुरुआत वर्ष 1998 में केरल सरकार द्वारा की गई थी। इसका उद्देश्य महिला सशक्तिकरण था। आज इस कार्यक्रम के तहत करीब 16,000 से भी ज्यादा भूमिहीन महिलाएं 40,000 हेक्टेयर भूमि के ऊपर संयुक्त खेती कर रही हैं।[42]

[42] *Menon, A. 2016. Kerala's Kudumbashree Programme is Turning Women into Agripreneurs [online]. thebetterindia.come. Available from: http://www.thebetterindia.com/46685/kudumbashree-kerala-government-guruvayur-pooja-kadali-agriculture/.*

यह कार्यक्रम महिलाओं के सामुदायिक संगठनों की मदद से चलता है, जो पंचायत के साथ मिलकर काम करते हैं। इस कार्यक्रम का एक व्यापक ढांचा है और इसमें कई प्रकार की गतिविधियां शामिल हैं, जैसे माइक्रो–फाइनेंस, माइक्रो–हाउसिंग, और माइक्रो–इंटरप्राइज़ेज, इत्यादि। इस पुस्तिका में हम मुख्य रूप से संयुक्त खेती प्रयासों के बारे में जानेंगे, जिसमें किसान समूह, पारिस्थितिकी कृषि, मूल्य संवर्धन, और महिलाओं के लिए भूमि बैंक, इत्यादि शामिल है।

कुडुम्बश्री संयुक्त दायित्व समूह के सदस्यों का एक चित्र
Photo credits: Kudumbashree

संघबद्ध नीचे से ऊपर के दृष्टिकोण वाला ढांचा

कुडुम्बश्री का तीन स्तरीय ढांचा है जिसकी शुरुआत सबसे नीचे से 'पड़ोसी समूह' (Neighbourhood Group) से होती है। इसमें एक ही इलाके की करीब 15 से 40 महिलाओं का एक समूह होता है, जो अलग–अलग परिवारों से आती हैं। पड़ोसी समूह अपने चुने हुए 'वॉलंटियर' की मदद से कई प्रकार के कार्य करते हैं। इसमें वॉलंटियर अध्यक्ष, वॉलंटियर सचिव, सामुदायिक स्वास्थ्य वॉलंटियर, आय–सृजन वॉलंटियर और अन्य संगठन के पद होते हैं। सामुदायिक स्वास्थ्य वॉलंटियर की जिम्मेदारी है कि वह सदस्यों के परिवार और बच्चों के स्वास्थ्य से जुड़े सभी मुद्दों की निगरानी करें। आय–सृजन वॉलंटियर एक स्थानीय लघु–उद्यम (micro enterprise) परामर्शकर्त्ता के रूप में काम करते हैं। वह सदस्यों को किफायती ऋण लेकर या बैंक से लोन लेकर लघु उद्यम या आजीविका गतिविधि शुरू करने के लिए प्रेरित करते हैं। प्रत्येक पड़ोसी समूह में कम से कम एक लघु–उद्यम जरूर होता है, जिससे समूह की थोड़ी बहुत आमदनी होती रहे। अंत में, इंफ्रास्ट्रक्चर वॉलंटियर सरकारी विभाग के साथ मिलकर समूह सदस्यों के लिए विभिन्न योजनाओं की जानकारी और प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते हैं।

पड़ोसी समूह के ऊपर 'क्षेत्र विकास समिति' (Area Development Society) और अंत में पंचायत के स्तर पर 'समुदाय विकास समिति' (Community Development Society) होता है जो चेरिटेबल सोसाइटी एक्ट के तहत पंजीकृत होता है। यह कई क्षेत्र विकास समितियों को मिलाकर बनता है। समुदाय विकास समिति और पंचायत के बीच आदान–प्रदान से नीचे से ऊपर का दृष्टिकोण मजबूत होता है और समुदाय की मांगें सहज रूप से स्थानीय सरकार तक पहुंच जाती हैं।

महिलाओं की संयुक्त खेती

कन्नूर जिले में कुडुम्बश्री की महिलाओं द्वारा चलाया जा रहा एक लघु उद्यम
Photo credits: Kudumbashree

केरल में भूमिहीन परिवारों के सामने सबसे बड़ी समस्या काम का अभाव था, क्योंकि पूरे राज्य में कृषि की दशा ठीक नहीं थी। बड़े पैमाने पर धान के खेतों को गैर–कृषि गतिविधियों के लिए बदला जा रहा था या फिर खाली छोड़ा जा रहा था। इसका एक कारण यह भी था कि खेती आमतौर पर फायदेमंद या व्यवहार्य नहीं थी। केरल में अधिकांश कृषि मजदूर महिलाएं हैं और उन्हें आजीविका के अवसरों के अभाव का सामना करना पड़ रहा था। दूसरी समस्या यह थी कि पट्टे पर जमीन उपलब्ध नहीं थी क्योंकि एक तरफ खेती के लिए पट्टा पर जमीन लेना राज्य भूमि सुधार कानून के तहत प्रतिबंधित था और दूसरी तरफ भूमिधारी जमीन देने के लिए इच्छुक नहीं थे। यहां तक कि वे अनौपचारिक रूप से भी नहीं दते थे क्योंकि उन्हें नियंत्रण खोने का डर लगा रहता था।

इस परिप्रेक्ष्य में कुडुम्बश्री के तहत संयुक्त खेती प्रयास शुरू किए गए जहां महिलाएं कृषि मजदूर के रूप में नहीं बल्कि उत्पादक के रूप में शामिल हो सकती थीं। इसका एक प्रमुख उद्देश्य भूमिहीन महिलाओं को राज्य की खाली पड़ी जमीन के साथ जोड़ना था।[43]

महिलाओं के छोटे समूह बनाए गए जिन्हें 'संयुक्त दायित्व समूह' (Joint Liability Group) कहा गया। यह विचार मोहम्मद यूनुस के माइक्रोक्रेडिट आंदोलन से निकला, जहां ऋण के लिए संयुक्त दायित्व लिया जाता था। इससे पूरे समूह की जिम्मेदारी बनती थी और कर्ज वापस चुकाने की संभावनाएं बढ़ जाती थी। इन 'संयुक्त दायित्व समूहों' का गठन नाबार्ड (NABARD) की दिशा निर्देश के अनुसार किया गया ताकि महिला उत्पादकों को बैंक द्वारा कृषि ऋण उपलब्ध कराया जा सके। इन समूहों के नाम पर बैंक खाता भी खोले गए।

'संयुक्त दायित्व समूह' कुडुम्बश्री के ब्याज सब्सिडी कार्यक्रम का हिस्सा है। जब वे बैंक से 7 प्रतिशत ब्याज पर कृषि ऋण लेते हैं तो राज्य सरकार उन्हें ब्याज पर 5 प्रतिशत की सब्सिडी देती है। अभी तक करीब 10,543 संयुक्त दायित्व समूहों ने करीब 123 करोड़ रुपयों के ऋण का लाभ उठाया है।

उपलब्ध भूमि की पहचान, लाभार्थियों का चयन, उनको समूह में बांटना, प्रशिक्षण देना, आगत सामग्रियों का वितरण, प्रोत्साहन राशि देना, इत्यादि समूह के प्रमुख कार्य हैं। सरकार की खाली जमीन या निजी भूमि को

[43] *Geethakutty. n.d. Gaining identity as farmers – A case of women collectives in Kerala | LEISA INDIA [online]. Leisa India. Available from: http://leisaindia.org/articles/gaining-identity-as-farmers/.*

भी खेती के लिए चुना जा सकता है। ज्यादातर खेती कीटनाशक प्रबंधन के बिना की जाती है। जीरो बजट प्राकृतिक खेती और अन्य परिस्थितिकी–कृषि पद्धतियों को प्रोत्साहित करने के लिए कई नए कार्यक्रमों की शुरुआत की गई है।

कुडुम्बश्री कुछ अन्य विशिष्ट प्रयासों को भी प्रोत्साहित करता है। खाली पड़ी जमीन को खेती में लाने के लिए आर्थिक प्रोत्साहन दिया जाता है। इसी प्रकार फसल का उत्पादन अच्छा होने पर भी आर्थिक रूप से प्रोत्साहित किया जाता है। इससे एक तरफ तो कृषि उत्पादन बढ़ा है, साथ ही पर्याप्त मात्रा में खाली पड़ी जमीन को ऊपर अब खेती की जा रही है। इस कार्यक्रम के जरिए हजारों महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण हुआ है।

कुडुम्बश्री द्वारा चलाए जा रहे लघु उद्यम अलामकोडे उत्पादक कम्पनी के कुछ उत्पाद
Photo credits: Kudumbashree

वर्ष 2013–14 के आंकड़ों से पता चलता है कि 47,611 संयुक्त दायित्व समूह करीब 40,218 हेक्टेयर भूमि में धान, फल जैसे अनानास और केला, सब्जियां जैसे करेला, अमरन, चिचिंडा, लोबिया, लौकी, तरबूज, अदरक, तुरई, टैपिओका, भिंडी, बेंगन, मिर्च, इत्यादि की खेती कर रहे थे। नारियल और काजू भी यहां की प्रचलित फसलें है।

खेती कर रही महिलाओं को कई सफलताएं मिलीं।[44] एक महिला ने कहा :

> *''हमने इस बात को गलत साबित कर दिया कि कृषि लाभदायक नहीं है। हमारा समूह 'ऐश्वर्य' ने खेती करने के लिए बैंक से 60,000 रुपये का कर्ज लिया था। हमने खाली पड़ी 75 सेंट भूमि के ऊपर केले की 'नेंद्रान' किस्म की खेती की। हमने 6 महीने के अंदर सारा कर्ज चुका दिया। सब्सिडी से काफी मदद मिली। हमने एक मौसम में करीब एक लाख रुपये का मुनाफा कमाया''* – *यह कहना था 39 वर्ष की बीना प्रदीप का जो वल्लाचिरा गांव से हैं।*

एक अन्य मामले में 6,000 संयुक्त दायित्व समूह की करीब 30 हजार महिलाओं ने केरल कृषि विश्वविद्यालय की देखरेख में तिरुवनंतपुरम जिले में केला उत्पादन को 8 से 20 मीट्रिक टन प्रति हेक्टेयर बढ़ा दिया।

ग्राम पंचायतें महिलाओं को कृषि औजार और मशीन इस्तेमाल करने का प्रशिक्षण देती हैं। इन प्रशिक्षित

---

[44] *यह भाग मेनन के लेख से उद्धृत है (Menon, A. 2016. Kerala's Kudumbashree Programme is Turning Women into Agripreneurs [online]. thebetterindia.come. Available from: http://www.thebetterindia.com/46685/kudumbashree-kerala-government-guruvayur-pooja-kadali-agriculture/.*

महिलाओं को कुडुम्बश्री की 'वनीथा कर्मा सेना' या 'हरित सेना' के रूप में जाना जाता है। महिलाएं अपना खुद का श्रम इस्तेमाल करके पैसे भी बचा लेती है।

''अगर हम नारियल पेड़ पर चढ़ने वाले को, टिलर मशीन चलाने वाले को, या बुआई मशीन चलाने वाले को पैसे देने लगे तो इसमें हमारा नुकसान है। हमने महिलाओं को कृषि से जुड़े अलग–अलग मशीनों का इस्तेमाल करने के लिए प्रशिक्षित किया है और कर्ज की मदद से अधिकतर समूह के पास उनकी खुद की मशीनें हैं। इससे उनकी अच्छी खासी बचत हो जाती है'' – यह कहती हैं 40 वर्षीय बिंदु शिवादासन, जो मुट्टाथूर पंचायत की अध्यक्ष है।

कुडुम्बश्री और नाबार्ड की मदद से ऋण की सहज उपलब्धता ने महिलाओं को खेती नष्ट होने तक के संकट से उभरने में मदद की है। जिन बैंकों ने पहले इन महिलाओं को लोन देने से मना कर दिया था अब वे इन्हें ऋण के लिए सबसे ज्यादा योग्य और विश्वसनीय मानते हैं।

3. गंभीरा संयुक्त खेती समिति

'गंभीरा संयुक्त खेती समिति' गुजरात के खेड़ा जिले में है। 'अमूल' का आनंद जिला इसके पड़ोस में है। यहां सीमांत किसानों को अपनी जमीन से फायदा नहीं हो रहा था। इससे जुड़ी समस्याओं से निपटने के लिए वर्ष 1953 में 'गंभीरा संयुक्त खेती समिति' का गठन किया गया था।

इस समूह को 'सहकारी समिति अधिनियम, 1953' के अंतर्गत पंजीकृत किया गया है। सरकार ने इन समूहों को इस शर्त पर भूमि दी कि किसी कारणवश अगर समिति बंद होने की स्थिति आती है तो इस जमीन को वापस करना पड़ेगा। गंभीरा समूह ने पारंपरिक सहकारी समितियों की तमाम समस्याओं का सफलतापूर्वक सामना किया, जैसे 'मुफ्त सवारी', जिम्मेदारियों से भागने की रोकथाम, अभिजात वर्ग का कब्जा और अवसरवाद, इत्यादि। काम और मुनाफे का बंटवारा, दंड और प्रतिबंध जैसे नियमों और सिद्धांतों को बनाने और पालन करने में यह कामयाब रहा है, जिसके कारण इन्हें सफलता मिलती रही।

गंभीरा संयुक्त खेती समिति के कुल 291 सदस्य हैं, जो 8 से 14 सदस्यों वाले 30 समूह में बंटकर करीब 526 एकड़ भूमि में संयुक्त खेती कर रहे हैं। ये समूह छोटे और सामाजिक रूप से समरूप हैं जिससे ये संभ्रांतवाद जैसी समस्या से बच जाते हैं और व्यक्तिगत संपर्क व सामूहिक जिम्मेदारी सहज हो जाती है। भूमि और अन्य औजार समिति के होते हैं और सदस्यों का इन पर कोई स्वामित्व नहीं होता है। समिति के कार्यों में शुरुआती जुताई, आगत सामग्रियों की खरीद, सिंचाई और उत्पाद की मार्केटिंग जैसे काम शामिल हैं।

संगठन :

यह समिति करीब 8 से 14 सदस्यों वाले कुल 30 समूहों में बंटी हुई है। हर समूह अपना एक नेता चुनते हैं। प्रत्येक समूह को खेती के लिए 13 से 24 एकड़ की जमीन मिलती है। फसल योजना संयुक्त रूप से तय की जाती है और संयुक्त रूप से ही कृषि सामग्रियां खरीदी जाती हैं। गंभीरा समिति इन्हें तकनीकी मदद प्रदान करती है। सदस्य अपने उत्पादन का आधा हिस्सा समिति को दे देते हैं जो आगे उनकी मार्केटिंग करती है।

समिति अपने कारोबार को संभालने के लिए एक प्रबंधक, सुपरवाइज़र, ट्यूबवेल ऑपरेटर, ट्रेक्टर ड्राईवर,

क्लर्क और चपरासी की नियुक्ति करती है, जिनको वो एक निश्चित वेतन देती है। सबसे ऊपर एक प्रबंधन कमेटी होती है जिसमें 8 सदस्य होते हैं। इनका चयन आम सभा (General Body) द्वारा किया जाता है।

प्रबंधन कमेटी के कार्य और जिम्मेदारियों में नए सदस्यों को जोड़ना, आगत सामग्री (जैसे बीज, कीटनाशक, खाद) की खरीद और भंडारण, कृषि उत्पाद की बिक्री, ऋण की मंजूरी, भुगतान नहीं किए गए खर्च की भरपाई, समिति की ऋण आवश्यकताएं और बचत, समिति के संपत्ति की बिक्री या दान, निर्माण कार्य, और जिला रजिस्ट्रार के परामर्श से भूमि की खरीद इत्यादि शामिल है। प्रबंधन कमेटी के काम में समिति के कर्मचारियों (प्रबंधक को छोड़कर) की नियुक्ति और निकाला, उनका वेतन और प्रोत्साहन राशि तय करना, खाता की जांच, वार्षिक रिपोर्ट तैयार करना और प्रस्तुत करना, और आगत सामग्री खरीदने के लिए रकम की मंजूरी देना, इत्यादि शामिल है। प्रबंधन कमेटी का कोई भी सदस्य वेतन नहीं लेता है।

प्रबंधन कमेटी के सदस्य एक अध्यक्ष का चयन करते हैं, जिसका कार्यकाल 3 साल का होता है। अध्यक्ष प्रबंधक के काम की देखरेख करता है, क्षेत्र का दौरा करता है, और समूह के नेताओं और प्रबंधन कमेटी सदस्यों का मार्गदर्शन करता है।

सुपरवाइज़र रोजाना समिति के प्रबंधक को रिपोर्ट करता है। उसका काम रोजाना समिति के अध्यक्ष और प्रबंधक को कार्य की प्रगति और फसल की स्थिति के बारे में रिपोर्ट करना, समूह के नेताओं का मार्गदर्शन, समूहों के काम की देखरेख, आगत सामग्रियों (बीज, खाद और कीटनाशक) का वितरण, और समिति की सभी कृषि गतिविधियों की निगरानी करना होता है।

समिति की कार्य पद्धति

समूह नेता के मार्गदर्शन में आवंटित की गई भूमि के ऊपर सारे कृषि कार्य को करने की जिम्मेदारी पूरे समूह की होती है। समूह के सदस्य अपने नेता का चयन करते हैं और जरूरत पड़ने पर उनको बदल भी सकते हैं।

खेती के लिए समिति द्वारा ट्रैक्टर उपलब्ध कराया जाता है। बीज को प्रबंधक कमेटी द्वारा एक साथ ज्यादा मात्रा में खरीदा जाता है और सुपरवाइजर इन बीजों का प्रबंधन कमेटी के निर्णय के आधार पर समूह के नेताओं को वितरण करते हैं। समूह के नेता आवंटित भूमि पर कृषि कार्य की देखरेख करते हैं और समूह के सदस्यों के बीच काम का बराबर बंटवारा करते हैं।

फसल की देखरेख सुपरवाइजर द्वारा की जाती है, हालांकि संयुक्त कार्य जैसे निराई, पहरा देना, इत्यादि पूरा समूह मिलकर करता है। कटाई के बाद के कार्य, जैसे कटाई, कुटाई (थ्रेशिंग) या सफाई को समूह के सारे सदस्य मिलकर करते हैं। अंत में उत्पाद समिति को भेज दिया जाता है।

किसान यहां पर तंबाकू, धान, गेहूं, बाजरा, और जौ की खेती करते हैं।

जोखिम और मुनाफा, दोनों का बराबर हिस्सा सदस्यों के बीच बांट दिया जाता है।

फसल उत्पादन से निकले चारा का भी बराबर बंटवारा होता है। समूह के सदस्य खुद श्रम करते हैं और खेती से हुए उत्पादन और मुनाफे को बराबर बांट दिया जाता है। पहले समिति फसल उत्पादन का 50 प्रतिशत खुद रख लेती थी और बचा हुआ 50 प्रतिशत अलग–अलग समूह में बांट देती थी। पर हाल के वर्षों में यह

अनुपात बदल गया है। अब समिति अपने पास बहुत थोड़ा रखती है और बाकी सारा सदस्यों में बांट दिया जाता है। शिक्षा और विकास के लिए समिति छोटा सा फंड बचा कर रखती है और खत्म हो जाने पर उन्हें दोबारा भर दिया जाता है। सारे खर्चों के बाद जो मुनाफा बचता है उसे बोनस की तरह सारे सदस्यों में बांट दिया जाता है।

प्रत्येक समूह के योगदान के अनुपात में आमदनी को भी बांटा जाता है। प्रत्येक समूह प्राप्त किए गए बोनस को अपने सदस्यों में बांट देते हैं। समूह के नेता के पास प्रत्येक सदस्य के योगदान की जानकारी होती है और वह उसी अनुपात में आमदनी का हिस्सा बांट देता है।

समूह के नेता को 15 प्रतिशत प्रोत्साहन राशि का भुगतान किया जाता है क्योंकि बाकी सदस्यों की तरह उन्हें भी बराबर योगदान करना होता है।

प्रत्येक सदस्य एक वर्ष में 150 से 180 दिनों का श्रम देता है। उसे सालाना करीब 90,000 रुपयों की आमदनी होती है (वर्ष 2010 में) और इसके अलावा उसे बोनस भी मिलता है। अतिरिक्त कमाई के लिए सदस्य अगर चाहे तो इन बचे हुए दिनों में कोई अन्य रोजगार कर सकते हैं या वे अपने खुद की जमीन पर भी काम कर सकते हैं। अकेले खेती करने वाले किसानों के मुकाबले इन किसानों की आमदनी बहुत ज्यादा होती है।

प्रत्येक सदस्य को समिति या समूह द्वारा तय किए गए काम की सभी शर्तों को पूरा करना होता है, ऐसे में 'मुफ्त सवारी' नामुमकिन हो जाती है। समूह के नेता अपने समूह के साथ काम करते हुए लगातार सदस्यों के काम के निगरानी करते रहते हैं। समूह के सदस्य भी आपस में एक दूसरे के काम के ऊपर नजर रखते हैं।

किसी सदस्य द्वारा नियम उल्लंघन करने पर उस पर जुर्माना लगाया जाता है जिसे समूह का नेता के पास जमा किया जाता है। समूह के सारे सदस्यों को एक निश्चित समय पर काम पर आना पड़ता है, जिसे सारे सदस्यों द्वारा आम सहमति से तय किया जाता है। काम पर आने में देर होने से जुर्माना लग सकता है। बाद में समूह ही तय करता है कि इस जुर्माने की राशि को कहां खर्च किया जाए या कैसे बांटा जाए।

प्रभाव

इन किसानों के पास बहुत छोटे खेत थे और वे आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं थे। करीब 90 प्रतिशत किसान पिछड़ी जाति से आते हैं। अकेले खेती करने वाले किसानों के मुकाबले समूह के किसान साल में 150–180 दिन काम करके उनसे ज्यादा कमा लेते हैं।

अपने खेत से (औसत जोत 1.76 एकड़ प्रति व्यक्ति) से और अपने श्रम से प्रत्येक व्यक्ति 1 वर्ष में करीब 90,000 रुपये कमा लेता है (वर्ष 2019–10 में)।

समिति के कार्य से लोगों की आमदनी बढ़ी है और जीवन स्तर बेहतर हुआ है। इसके साथ–साथ अन्य सामाजिक कार्य, जैसे – सदस्य के बच्चों की शिक्षा, तथा गांव के अन्य विकास कार्य, जैसे – स्कूल का निर्माण, सड़क, पेयजल की व्यवस्था इत्यादि भी किए गए।

4. डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी, तेलंगाना में महिलाओं की सामूहिक खेती[45]

सामूहिक खेती के सबसे अच्छे और बेहतरीन उदाहरणों में से एक हम तेलंगाना के सूखा प्रभावित मेदक जिले में 'डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी' के प्रयासों में देख सकते हैं।

'डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी' ने गरीब पिछड़ी जाति की महिलाओं का समूह या 'संगम' बनाने में मदद की जिससे वे विभिन्न सरकारी ऋण योजनाओं की मदद से जमीन पट्टे पर ले सकें या खरीद सकें और संयुक्त खेती कर सकें। जमीन को आमतौर पर अलग–अलग भूमि धारकों से 3 साल के लिए पट्टे पर लिया जाता है और उसके बाद नए पट्टे के लिए समझौता किया जाता है। ऊंची जाति वाले भूमि धारकों और संगम के दलित सदस्यों के बीच यहां अनोखा व्यापारिक संबंध है। अधिकतर भूमि धारक इन संगम सदस्यों को विश्वसनीय और बेहतर किराएदार के रूप में देखते हैं।

यहां जैविक पद्धति से और खेत से बचाए हुए बीजों की मदद से खेती की जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य समूह के सदस्य और समुदाय के परिवारों के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना है।

संगम के सदस्य खेती के खर्च का एक हिस्सा खुद वहन करते हैं और बचा हुआ हिस्सा डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी द्वारा बिना ब्याज के कर्ज के रूप में दिया जाता है। जिन गरीब महिलाओं के पास पैसे नहीं होते हैं वे अपना हिस्सा श्रम करके चुका सकती हैं। जुताई को छोड़कर सारे काम सभी मिलजुल कर करते हैं। जुताई के लिए ट्रैक्टर भी किराए पर लिया जाता हैं।

एक बार जब सारे खर्चों का भुगतान हो जाता है तो बचे हुए उत्पाद को सभी सदस्यों में बराबर बांट दिया जाता है।

राज्य सरकार भी महिलाओं के इन समूहों को जमीन पट्टे पर लेने के लिए अलग–अलग ऋण देकर सहयोग करते आई है। कुछ महिला समूहों ने तो 'पिछड़ी जाति सरकारी ऋण योजना' की मदद से थोड़ी जमीन भी खरीदी है। डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी पहले तो इन महिलाओं को जमीन चुनने या ढूंढने में मदद करती है और फिर सरकारी ऋण या स्कीम के लिए आवेदन भरती है। भूमि को समूह के सभी सदस्यों में बराबर बांट दिया जाता है और उनके नाम से पंजीकृत किया जाता है।

वर्ष 2008 में महिलाओं के 25 समूह बने थे जिसमें 436 महिलाएं करीब 555 एकड़ (224 हेक्टेयर) की खरीदी हुई भूमि के ऊपर खेती कर रही थीं जो 21 गांव में फैली हुई थी।

अधिकांश महिलाओं के पास करीब 1 एकड़ की जमीन है जो वे संगम में जोड़ देती हैं जिससे वे संयुक्त खेती कर सकें। आमतौर पर खरीदने से पहले महिलाएं जमीन को पट्टे पर लेती है ताकि उसकी जांच हो जाए। महिलाएं अपने समय का एक हिस्सा ही संगम को देती है। वे बचे हुए समय में अन्य रोजगार के कार्य (जैसे दिहाड़ी मजदूरी) करने के लिए मुक्त हैं।

---

[45] यह केस स्टडी बीना अग्रवाल के लेखों पर आधारित है;

– Agarwal, B. 2010a. Rethinking Agricultural Production Collectivities. Economic & Political Weekly, xlv(9), 64–78.
– Agarwal, B. 2010b. Rethinking Agricultural Production Collectivities: The case for a group approach to energize agriculture and empower poor farmers | EABER. No. 305.

समूह के अंदर 'मुफ्त की सवारी' या जिम्मेदारियों से भागना जैसी समस्याओं को सदस्यों के आपसी दबाव के जरिए निपटा जाता है। जो लोग अपनी जिम्मेदारियों को पूरा नहीं कर पाते उन्हें दंड दिया जाता है। क्योंकि महिलाएं आसपास रहती हैं और एक दूसरे को जानती हैं। वे आसानी से बता सकती हैं कि कब सही वजह से काम कम किया गया है और कब जानबूझकर। अगर मजबूरी या कठिन परिस्थिति के कारण किसी के काम में कमी आती है, तो उन्हें छोड़ दिया जाता है और साथ में मदद भी की जाती है।

महिला संगम के जैविक उत्पाद
जिसे संगम जैविक के नाम बेचा जाता है
Photo credits: Sangham Organics

संगम से महिला सदस्यों की जिंदगी में बड़े बदलाव आए हैं। इनमें से किसी भी नीची जाति की महिला के लिए अपने आप ऐसी जमीन खरीद पाना या उत्पादन का काम सीखना संभव नहीं था। दूसरे फायदे जो महिलाओं ने समूह खेती के बारे में बताया, वह है परिवार की खुराक में सुधार, स्वास्थ्य देखभाल, और बच्चों की शिक्षा, समुदाय में सम्मान और शादी के लिए अच्छे रिश्ते, इत्यादि। अब जब भी उन्हें अलग से काम मिलता है तो वे ज्यादा दिहाड़ी के लिए मोल–तोल करती हैं, क्योंकि उनके पास पहले से ही एक आजीविका का साधन मौजूद है। बंधुआ मजदूरी या जातिगत अपमान में भी कमी आई है। महिलाओं ने यह भी बताया कि स्थानीय सरकारी अधिकारी उन्हें पुरुशों के मुकाबले ज्यादा प्राथमिकता देते हैं। घर के अंदर भी महिलाओं ने बताया की घरेलू हिंसा में कमी आई है और खुद की कमाई के ऊपर अब उनका ज्यादा नियंत्रण है।

इस कार्यक्रम के संबंध में डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी ने एक वैकल्पिक जन वितरण प्रणाली की शुरुआत की है। पुरुष और महिलाओं को 1 से 2 एकड़ की खाली जमीन पर खेती करने के लिए संगम आर्थिक मदद देते हैं या सरकार से ऋण प्राप्त करने में मदद करते हैं। इसके बदले में उन्हें एक निर्धारित मात्रा में अनाज सार्वजनिक भंडार में जमा करना होता है। इस भंडार का प्रबंधन संगम की महिलाओं द्वारा किया जाता है। इस अनाज को सबसे गरीब परिवारों को मामूली दर पर बेचा जाता है।[46] इस भंडार को 'सामुदायिक अनाज बैंक' कहते है जिसे बनाने के लिए महिलाओं को राज्य द्वारा सहायता प्रदान की जाती है। वर्ष 1994 में करीब 2,500 एकड़ से भी ज्यादा खाली जमीन के ऊपर खेती की गई। आसपास के 30 सहभागी गांव में करीब 8 लाख किलो से भी ज्यादा ज्वार का उत्पादन हुआ, जो करीब 30 लाख अतिरिक्त भोजन के बराबर था। इस प्रयास में जो चारा तैयार हुआ उससे करीब 6000 अतिरिक्त मवेशियों का काम चल सकता था। वर्ष 2003 तक यह कार्यक्रम 3,600 एकड़ में फैल चुका था।

[46] *Deccan Development Society. 2016a. Community Controlled Public Distribution System: Experiences from Andhra Pradesh [online]. Available from: http://ddsindia.com/PDF/Community PDS.pdf [Accessed 2 Nov 2016].*

यह वैकल्पिक जन वितरण प्रणाली सरकारी प्रणाली में दिए जाने वाले केवल गेहूं और चावल की तुलना में काफी बेहतर है क्योंकि यह विविधतापूर्ण पौष्टिक भोजन प्रदान करता है। समुदाय के सदस्यों ने खाद्य सहायता प्राप्त करने की योग्यता से जुड़े नियम बनाए हुए हैं। यह समुदाय द्वारा प्रबंधित होता है, जो पारिस्थितिकी–कृषि के सिद्धांत पर विश्वास करते हैं और समुदाय के सदस्यों को आजीविका प्रदान करते हैं और वह भी केवल खाली जगहों का इस्तेमाल करके।

ग्रामीण स्तर पर महिलाओं का अपना संगम बाजार है। उन्होंने जहीराबाद शहर में एक साखा की शुरुआत भी की है, जो देश का पहला महिलाओं द्वारा संचालित जैविक बाजार है। इन बाजारों में महिलाएं अपने उत्पाद बेचती हैं और अपनी जरूरत का सामान यहां से खरीद लेती हैं। इनके पास अपने सामान को अलग–अलग शहरी केंद्रों में ले जाने के लिए और शहरी उपभोक्ताओं तक अपना सामान पहुंचाने के लिए एक गाड़ीनुमा दुकान (मोबाइल वैन) भी है। वे इस चलती–फिरती दुकान को शहर में अलग–अलग स्थानों में खड़ा करके अपना उत्पाद शहरी उपभोक्ताओं को बेचते हैं। बेचने के लिए मोटे अनाज, दालें, तिलहन, गुड़ और अन्य मिश्रण के लिए तैयार उत्पाद जैसे डोसा, माल्ट, दलिया इत्यादि का उत्पादन किया जाता है।

5. वसुंधरा एग्री–होर्टी प्रोड्यूसर कंपनी (VAPCOL) : किसान उत्पादक कंपनी

वसुंधरा एग्री –होर्टी के प्रोड्यूसर कंपनी के उत्पाद
Photo credits: VAPCOL
Source: VAPCOLS Facebook page: http://bit.ly/2egardY

'वसुंधरा एग्री–होर्टी प्रोड्यूसर कंपनी' (Vasundhara Agri-Horti Producer Company Limited – VAPCOL) का गठन 'भारतीय एग्रो इंडस्ट्रीज फाउंडेशन' (BAIF) नामक एक एनजीओ ने किया था। कई किसान संगठनों को मिलाकर इस उत्पादक कंपनी का गठन किया गया है, जिसमें सहकारी समितियां, किसानों के संघ, और स्वयं–सहायता समूह संघ शामिल हैं। वसुंधरा ने अपना काम वर्ष 2008 में शुरू किया और पहले ही साल में इसने आम और काजू उत्पाद बेचकर करीब 340 लाख रुपयों का व्यापार किया। आज वसुंधरा में 37 सदस्य समूह शामिल हैं जो गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, और राजस्थान के विभिन्न जिलों से हैं। इसका मुख्यालय पुणे, महाराष्ट्र में है। यह भारत में सबसे बड़े उत्पादक कंपनियों में से एक है और इसका सांगठनिक ढांचा बहुत ही जटिल है।

उदाहरण के लिए, वर्ष 2010 में, महाराष्ट्र में 7 खेती समूह थे, जो 258 गांव में फैले हुए थे जिनमें कुल 13,848 परिवार सदस्य थे। कुल 4,975 हेक्टेयर (12,294 एकड़) में खेती की जाती थी। करीब 67 प्रतिशत परिवार

0.4 हेक्टेयर (1 एकड़) जमीन पर काम करते थे; 31 प्रतिशत खेतों का औसतन नाप 0.2 हेक्टेयर (0.5 एकड़) था; और 2 प्रतिशत खेत 0.61 हेक्टेयर (1.5 एकड़) के थे।

वसुंधरा गरीब परिवारों के साथ–साथ छोटे किसानों और भूमिहीन लोगों को अपना व्यापार भागीदार बनाने में कामयाब रहा, जिन्हें हमेशा नजरअंदाज किया जाता रहा है।

वसुंधरा मुख्य रूप से आम और काजू का व्यापार करता है। महाराष्ट्र में काजू उत्पाद को स्थानीय स्तर पर जमा किया जाता है और उन्हें वसुंधरा द्वारा गठित किए गए चार गांव–स्तरीय प्रसंस्करण इकाइयों में से किसी एक में ले जाया जाता है। यहां पर काजू को उबालना, काटना, छीलना और सुखाने का काम होता है। फिर अर्ध–प्रसंस्कृत काजू को अलग–अलग ग्रेड में बांटकर पैकेटों में भरा जाता है जिसे वसुंधरा का अपना ब्रांड 'वृंदावन' के नाम से बेचा जाता है।

वसुंधरा का मुख्य उद्देश्य एक उत्पादक कंपनी के रूप में उत्पादकों और थोक खरीदार के बीच बाजार के संबंध स्थापित करने का है। ये खरीदार संगठनों के साथ केंद्रीय स्तर पर समझौता करते हैं और उपयुक्त जानकारियों को संगठन के नीचे स्तर तक भेजते हैं।

वसुंधरा अपने उत्पादों को आमतौर पर संस्थागत खरीदारों को बेचती है (उदाहरण, ITC जैसी बड़ी कंपनी)। इन उत्पादों को खुले बाजार में व्यापारियों को भी बेचा जाता है। वसुंधरा के सदस्य परिवार भी इन उत्पादों का अपने घरों में सेवन करते है। वसुंधरा के पास कई अलग–अलग मार्केटिंग प्लान है। बड़े संस्थागत ख़रीदारों के साथ पहले से मूल्य के ऊपर समझौता हो जाने से वसुंधरा के किसानों को एक बना बनाया बाजार मिल जाता है और वे बाजार के उतार–चढ़ाव से बच जाते हैं।

वसुंधरा किचन गार्डन में सब्जियों की खेती का प्रोत्साहन कर रहा है, जैसे – टमाटर, मूली, करेला, मिर्च, फलियां, ककड़ी, और कद्दू इत्यादि। इसकी मदद से न सिर्फ परिवार का पोषण स्तर बढ़ा है, बल्कि अतिरिक्त सामग्रियों को स्थानीय बाजार में बेच कर थोड़ी बहुत ऊपरी कमाई भी हो जाती है। सामुदायिक खेती में पारिस्थितिकी–कृषि तरीकों को प्रोत्साहित किया जा रहा है, जो पर्यावरण के लिए फायदेमंद होते हैं, जैसे वर्षा–जल संग्रहण और संरक्षण। सदस्य किसानों को इन मुद्दों के ऊपर प्रशिक्षण और अन्य सहयोग दिया जाता है।

वसुंधरा ने समुदाय के अंदर रोजगार के अवसर भी पैदा किए हैं जिससे परिवारों की आर्थिक स्थिति सुधरी है। इस वजह से लोगों का पलायन रुका है। कंपनी के पहले ही वर्ष में करीब 42.5 प्रतिशत सदस्य परिवारों को वसुंधरा के जरिए 8 से 12 महीनों का रोजगार मिला है। केवल 6.5 प्रतिशत भागीदारों को ही कोई अतिरिक्त रोजगार के अवसर इस दौरान नहीं मिल पाए। इस तरह के रोजगार सृजन से मजदूरों का पलायन बहुत हद तक रुक गया है और वे अब कृषि गतिविधियों में भाग ले रहे हैं।

एक ग्रामीण उत्पादक समूह बनाने के लिए ऊपर दिए गए केस स्टडी से हम कुछ महत्वपूर्ण सबक सीख सकते हैं :

1. नीचे से ऊपर के दृष्टिकोण वाले समूह, न की ऊपर से नीचे के दृष्टिकोण वाले – यह स्पष्ट हो गया है कि ऊपर से नीचे के दृष्टिकोण वाली समितियों को काफी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि एक नीचे से ऊपर के दृष्टिकोण वाली समिति के बारे में ही सोचा जाए।

2. समूह को छोटा रखा जाए – 15 सदस्यों तक के छोटे समूह एक इकाई के रूप में संयुक्त काम के लिए आदर्श हैं।

3. समूह को सामाजिक रूप से समरूप रखा जाए – समूह के सदस्यों को एक ही सामाजिक श्रेणी से होना चाहिए। इससे ऊंच–नीच और भेदभाव की भावना से बचा जा सकता है और सदस्य खुलकर समान उद्देश्यों और आकांक्षाओं के लिए काम कर सकेंगे।

4. महिलाओं का समूह ज्यादा कारगर होता है – अनुभव बताते हैं कि महिलाओं का समूह पुरुषों की तुलना में ज्यादा बेहतर काम करता है। उदाहरण के लिए, 'डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी' और बांग्लादेश की BRAC संस्था (जिसने माइक्रो–क्रेडिट की शुरुआत की थी) ने पुरुषों के साथ काम करना शुरू किया था पर बाद में वे पूरी तरह से केवल महिलाओं के साथ ही काम करने लगे। इसके पक्ष में कई तर्क हैं, जैसे – महिलाएं ज्यादा संसाधनहीन होती हैं, इसलिए वे सहकारिता से ज्यादा फायदा उठा सकती हैं; महिलाओं के पास अक्सर सामाजिक सहायता का बेहतर नेटवर्क होता है; उन्हें दूसरी महिलाओं के साथ सहयोग करने की आदत होती है; महिलाएं विवाद का आसानी से निपटान कर पाती हैं; इत्यादि।

5. स्वेच्छाधीनता की कुंजी – सरकारी या ऊपर से नीचे के दृष्टिकोण वाले प्रयासों के साथ समस्या यह होती है कि इससे किसानों के ऊपर जुड़ने या बने रहने का बड़ा दबाव होता है। कई बार किसानों के लिए जुड़ना तो आसान होता है पर बाहर निकलना मुश्किल; बाहर निकलने के लिए कभी–कभी तो उन्हें अपनी जमीन से भी हाथ धोना पड़ता है।

6. नियंत्रण और दंड के प्रावधान होने चाहिए जिससे 'मुफ्त सवारी' और कामचोरी को रोका जा सके और सभी का एक दूसरे के साथ सहयोग सुनिश्चित किया जा सके।

7. सभी महत्वपूर्ण निर्णय संयुक्त रूप से लेना चाहिए, न किसी बहारी या विशेषज्ञ की मदद से। अगर प्रबंधन के पद पर विशेषज्ञों को रखा गया हो फिर भी महत्वपूर्ण निर्णय हमेशा समूह द्वारा ही लिया जाना चाहिए।

8. उपलब्ध सरकारी नीतियों का फायदा उठाना चाहिए – सभी केस स्टडी से यह पता चलता है कि उन्होंने अलग–अलग सरकारी स्कीम और कार्यक्रमों का फायदा उठाया था। उदाहरण के लिए,

नाबार्ड एक महत्वपूर्ण विभाग है जिससे उत्पादक समूह बनाने में मदद ली जा सकती है। नाबार्ड स्वयं–सहायता समूहों, किसान उत्पादक कंपनियों, और अन्य लोगों को प्रशिक्षण और कई प्रकार के अन्य सहयोग देता है।

9. बाहरी घटकों की भूमिका – एनजीओ जैसे बाहरी घटकों ने अक्सर कामयाब सामूहिक संगठनों के शुरुआती दौर में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनके पास स्थापना, आयोजन और संचालन की विशेषज्ञता होती है और वे प्रमुख सरकारी कार्यक्रमों और नीतियों के बारे में जानकार भी होते हैं। समूह ऐसे एनजीओ के साथ संपर्क कर सकते हैं। लेकिन यह ध्यान रहे कि अंतिम लक्ष्य 'स्वायत्तता' का हो; किसी एनजीओ पर निर्भरता से बचना चाहिए। एनजीओ को भी यह ध्यान रखना चाहिए कि एक बार जब समूह स्वायत्त हो जाए तो वह धीरे से पीछे हट जाएं।

10. हम देख सकते हैं कि सभी उत्पादक समूह एक बराबर नहीं होते हैं और एक तरह का काम नहीं करते हैं। कुछ का ध्यान बाजार की तरफ ज्यादा होता है, वहीं विशेष रूप से गरीब समूहों का ध्यान सामाजिक पैरोकार, जैसे खाद्य सुरक्षा और जमीन की उपलब्धता, के ऊपर ज्यादा होता है। असल में इन दोनों के बीच एक संतुलन बनाए रखना चाहिए और इस बारे में सदस्यों के बीच लगातार बहस होती रहनी चाहिए। केवल बाजार उन्मुख ढांचे से हो सकता है कि उत्पादन बढ़ जाए पर इससे सामाजिक कार्य जैसे खाद्य सुरक्षा पूरे नहीं होंगे। इसके साथ–साथ आत्मनिर्भर, फायदेमंद और टिकाऊ बनने के लिए बाजार की सूझबूझ होना भी बहुत जरूरी है।

References

Administrative Reforms Commission. 2008. Social Capital – A Shared Destiny.

Agarwal, B. 2010a. Rethinking Agricultural Production Collectivities. Economic & Political Weekly, xlv(9), 64–78.

Agarwal, B. 2010b. Rethinking Agricultural Production Collectivities: The case for a group approach to energize agriculture and empower poor farmers | EABER. No. 305.

Aji, S. 2016. Neither farmers, nor consumers happy with loss-making Karnataka Cooperative Milk Producers Federation - The Economic Times [online]. Economic Times. Available from: http://economictimes.indiatimes.com/industry/cons-products/food/neither-farmers-nor-consumers-happy-with-loss-making-karnataka-cooperative-milk-producers-federation/articleshow/50606629.cms.

Bureau. 2014. Politicisation of GCMMF threatens Amul | Business Line [online]. The Hindu BusinessLine. Available from: http://www.thehindubusinessline.com/economy/agri-business/politicisation-of-gcmmf-threatens-amul/article5549719.ece.

Choudhary, K. 1979. Group farming in India, the Gambhira experience. In: Group farming in Asia : experiences and potentials. Singapore: Singapore university press.

Deccan Development Society. 2016a. Community Controlled Public Distribution System: Experiences from Andhra Pradesh [online]. Available from: http://ddsindia.com/PDF/Community PDS.pdf [Accessed 2 Nov 2016].

Deccan Development Society. 2016b. DDS Sangham Organics [online]. Available from: http://ddsindia.com/pdf/DDS Sangham Organics.pdf [Accessed 3 Nov 2016].

Duncan, J. 2013. The White Revolution and reordering of relations among the pastoralists of Gujarat: a case for pastoralist policies. http://dx.doi.org/10.3362/2046-1887.2013.008.

Ebrahim, A. 2000. Agricultural cooperatives in Gujarat, India: Agents of equity or differentiation? Development in Practice, 10(2), 178–88.

Gaikar, V. 2015. An empirical study of co-operatives in India: with reference to the five year plans. The Business & Management Review, 5(4), 29–30.

Geethakutty. n.d. Gaining identity as farmers – A case of women collectives in Kerala | LEISA INDIA [online]. Leisa India. Available from: http://leisaindia.org/articles/gaining-identity-as-farmers/.

Hindu. 2012. Kudumbashree programme for woman farmer empowerment | Business Line [online]. The Hindu Businessline . Available from: http://www.thehindubusinessline.com/economy/agri-business/kudumbashree-programme-for-woman-farmer-empowerment/article3573378.ece.

International Co-operative Alliance. n.d. What is a co-operative? [online]. http://ica.coop. Available from: http://ica.coop/en/what-co-operative.

Kapoor, S. 2015. Rural Collective Action Organizations in India: Sustainability and Social Impact | Shrey

Kapoor - Academia.edu. University of St. Gallen.

Kothari, A. 2014. Very Much on the Map: the Timbaktu Collective.

Kulkarni, V. 2012. Agricultural lands fragment further in five years | Business Line [online]. The Hindu. Available from: http://www.thehindubusinessline.com/economy/agri-business/agricultural-lands-fragment-further-in-five-years/article4071210.ece.

Kumar, V., K.G. Wankhede, and H.C. Gena. 2015. Role of Cooperatives in Improving Livelihood of Farmers on Sustainable Basis. American Journal of Educational Research, Vol. 3, 2015, Pages 1258-1266, 3(10), 1258–66.

Malla, M. 2015. Workshop Report Producers Collectives and Livelihoods: Exploring Issues for Research and Policy.

Menon, A. 2016. Kerala's Kudumbashree Programme is Turning Women into Agripreneurs [online]. thebetterindia.come. Available from: http://www.thebetterindia.com/46685/kudumbashree-kerala-government-guruvayur-pooja-kadali-agriculture/.

Murray, E. 2008. Producer Company Model : Opportunities for Bank Finance. Cab Calling.

Nilsson, J. 1996. The nature of cooperative values and principles: Transaction cost theoretical explanations. Annals of Public and Cooperative Economics, 67(4), 633–53.

Parthasarathy, A. 2015. A Study On Origin And Growth Of Self Help Groups In India, 14, 250–4.

Planning Commission. 2012. Report of the working group on animal husbandry and dairy. 12th five year plan (2012-2017). New Delhi.

Ramdas, S.R. 2015. Death of Small-Farmer Dairies amidst India's Dairy Boom. Economic & Political Weekly EPW MAy, 9(19).

Sapovadia, V. and A. Patel. 2014. What Works for Workers' Cooperatives? An Empirical Research on Success & Failure of Indian Workers' Cooperatives.

Satheesh, P. 2009. our initiative on Cooperative Farming; request rethinking [online]. ddsindia.com. Available from: www.ddsindia.com [Accessed 3 Nov 2016].

Singh, S. and T. Singh. 2012. Producer companies in India: a study of organisation and performance. Draft report submitted to MoA, GoI. IEG, Delhi.

Sinha, K.N., L.D. Ahuja, and R.C. Pandey. 2012. INDIAN COOPERATIVE MOVEMENT A STATISTICAL PROFILE -2012 Compiled & Designed by.

Srikrupa, R., S. Ramdas, and R. Gopalan. 2016. Small Dairy Farmers Across India are Struggling for their Livelihoods [online]. The Wire. Available from: http://thewire.in/40436/small-dairy-farmers-across-india-are-struggling-for-their-livelihoods/ [Accessed 28 Jun 2016].

Trebbin, A. and M. Hassler. 2012. Farmers' Producer Companies in India: A New Concept for Collective Action? Environment and Planning A, 44(2), 411–27.

Vaidyanathan, a. 2013. Future of Cooperatives in India. Economic and Political Weekly, xlviii(18), 30–4

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ, एशिया (थाईलैंड, फिलीपीन्स एवं भारत) में स्थित एक नीति शोध संगठन है। फोकस भारत एवं विश्व के दक्षिण भाग (यानी विकासशील देशों) में वैश्वीकरण की राजनीतिक अर्थव्यवस्था और इस प्रक्रिया में अंतर्निहित प्रमुख संस्थाओं के बारे में शोध तथा विश्लेषण प्रदान कर सामाजिक आंदोलनों एवं समुदायों की सहायता करता है। फोकस के लक्ष्य दमनकारी आर्थिक एवं राजनीतिक संरचनाओं की समाप्ति, स्वतंत्र संरचनाओं तथा संस्थाओं का निर्माण, विसैन्यीकरण और शांति को बढ़ावा देना है।

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफतुंग (आर.एल.एस.)

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग (आर.एल.एस.) जर्मनी में स्थित एक फाउंडेशन है, जो दक्षिण एशिया की तरह ही विश्व के अन्य भागों में महत्वपूर्ण सामाजिक विश्लेषण और नागरिक शिक्षा के विषयों पर कार्य कर रहा है। यह एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था को बढ़ावा देता है। इसका उद्देश्य समाज एवं नीति निर्धारकों के सामने वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना है। यह शोध संगठनों, स्व–मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाले समूहों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को उन मॉडल्स के विकास में उनकी पहलों में मदद देता है, जिनमें अत्यधिक सामाजिक एवं आर्थिक न्याय देने की क्षमता है।